वापसी

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

६

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

वापसी

राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली ६

मूल्य : तीन रुपये, पचास नए पैसे
प्रथम संस्करण : सितम्बर, १९५९
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस दिल्ली

भूमिका

गत वर्ष मुझे आइसलैण्ड के नोबल पुरस्कार विजेता सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री हालडोर लैक्सनैस से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ था। जब एक कहानी-लेखक के रूप में मेरा परिचय उनसे करवाया गया, तो उन्होंने मुझसे पूछा 'आप एक कहानी कितनी बैठकों में लिखते हैं ?'

मैंने कहा, 'शुरू-शुरू में मैं प्रायः एक कहानी एक ही बैठक में लिखा करता था। उसके बाद दो बैठकों में एक कहानी लिखने लगा और अब तो तीन या चार बैठकों तक नौबत पहुंच गई है। इसका कारण यह भी है कि अब अपने समय पर मेरा अधिकार नहीं रहा।'

तब उन्होंने पूछा 'एक कहानी को आप एक ही बार में अन्तिम रूप दे लेते हैं, या दूसरी-तीसरी बार उसका परिष्कार होता है ?'

मैंने कहा, 'अपनी कहानी को प्रेस में भेजने से पहले दूसरी बार मैं पढ़ता ज़रूर हूं, पर उसमें अधिक परिवर्तन करने की ज़रूरत मुझे प्रायः अनुभव नहीं होती।'

श्री हालडोर का तीसरा प्रश्न था, 'आपकी कहानी की कल्पना का प्रथम रूप किस तरह का होता है ?'

मैंने कहा, 'केवल एक वाक्य, बल्कि बहुत बार तो केवल एक-दो शब्दों में ही मैं कहानी का केन्द्रीय भाव अपनी डायरी में नोट कर लेता हूं। बस इतना ही। समय मिलने पर उसी भाव को कहानी का मूर्त रूप देता हूं।'

तब उन्होंने मुझे अपने एक अंग्रेज मित्र लेखक के बारे में, जो आजकल अंग्रेजी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखकों में गिने जाते हैं, बताया कि वह अत्यन्त संक्षेप में अपनी कहानी लिखकर उसे अपने ड्राअर में डाल देते हैं। कम से कम छः महीना वह उसी तरह वहां पड़ी रहती है। उसके बाद वह एक ही बैठक में उसे पूरे विस्तार से लिख लेते हैं। दूसरे ही दिन वह कहानी सम्पादक के पास चली जाती है, जो उसमें आवश्यक परिष्कार करता है।'

मेरे लिए यह बात दिलचस्प थी। पर मैंने उनसे कहा कि 'सम्पादन करना तो अब मेरा पेशा ही है।'

इसी बातचीत के सिलसिले में मैंने श्री हालडोर से कहा, 'साहित्य के सभी माध्यमों (कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, संस्मरण आदि) में कहानी सबसे अधिक सौभाग्यशालिनी है।'

उन्होंने पूछा, 'यह किस तरह ?'

मैंने कहा, 'यह इस तरह कि साहित्य के अन्य माध्यमों का रूप उस पूर्णता से सार्वभौम नहीं है, जिस पूर्णता से कहानी सार्वभौम है। संसार के विभिन्न देशों में कविता, नाटक, उपन्यास आदि के रूप और प्रकार में काफी भेद है। पर कहानी का रूप पूरी तरह सार्वभौम है। यों तो साहित्य मात्र की पुकार सार्वभौम है, पर यह कहना अशुद्ध न होगा कि कहानी की पुकार सबसे अधिक सार्वभौम है। कहानी की टेकनीक संसार भर के सभी देशों में एक ही है, जबकि साहित्य के अन्य माध्यमों की टेकनीक के सम्बन्ध मे मतभेद की काफी गुंजाइश है। इसका प्रमाण यह है कि एक अच्छी कहानी संसार भर की किसी भी भाषा में अनुवादित होकर संसार भर के किसी भी देश में 'अच्छी कहानी' ही मानी जाएगी।'

श्री हालडोर ने जैसे बीच ही मे टोकते हुए कहा, 'ठीक है साहब। पर यह तथ्य भी आप भूलिए नहीं कि एक अच्छी कहानी लिखना बहुत ही कठिन काम है।'

मैंने कहा, 'बिलकुल ठीक !'

श्री हालडोर ने कहा, 'मैं तो यहां तक कहूंगा कि अच्छी कहानियां बहुत कम लिखी जाती हैं। यह इस कारण कि साहित्य के सभी माध्यमों में सबसे कठिन माध्यम भी कहानी ही है।'

मुझे अपने से सहमत पाकर वह कहते चले गए, 'साहित्य के अन्य सभी माध्यमों में आपको इस बात का अवसर प्राप्त है कि आप चाहें तो बहक भी जाए। पर एक अच्छी कहानी तो एक सधी हुई लीक के समान है, जिसपर से ज़रा भी इधर-उधर होने की गुंजाइश नहीं है। एक भी वाक्य कहानी मे ऐसा हुआ, जिसका सीधा सम्बन्ध कहानी के केन्द्रीय भाव से नहीं है, तो बस आप पकड़ लिए जाएंगे। कवि कल्पना की आड़ ले सकता है; उपन्यासकार के

सम्मुख तो एक बहुत विशाल कैन्वस रहता ही है; निबन्ध में एक विषय का सम्बन्ध बहुत आसानी से चाहे जिस भी विषय से जोड़ लिया जा सकता है; नाटक में रंगमंच की दृष्टि से भिन्न रस ग्राह्य माने जाते हैं, पर कहानी में बहक जाने की रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं है। इसीसे मैं कहता हूं कि अच्छी कहानी लिखना सबसे अधिक कठिन काम है।'

श्री लैक्सनैस की उस बात से मैं लगभग पूरी तरह सहमत हूं। 'लगभग' इसलिए कि साहित्य के क्षेत्र में 'कठिनता' शब्द का व्यवहार खतरनाक है। इस क्षेत्र में रुचि तथा सहज प्रतिभा कितनी ही कठिन गहराइयों को इस तरह पार कर जाती है, जिस तरह कुशल तैराक सैकड़ों गज गहरे पानी में मजे के साथ तैर जाता है। फिर भी यदि किसी आलोचक के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि कहानी लिखने के लिए गहरी सूझ-बूझ के साथ इस बात का ज्ञान रहना भी आवश्यक है कि कहानी एक लगभग अदृश्य लकीर पर चलने के समान है, इस लकीर को तालाश कर सकने की शक्ति कहानी-लेखक में होनी चाहिए।

कहानी क्या है और उसकी परिभाषा क्या है, इस सम्बन्ध में अपनी राय मैं 'तीन दिन' नामक पिछले कहानी-संग्रह में व्यक्त कर चुका हूं। उसी वक्तव्य में मैंने कहा था कि कहानी स्वयं अपने में इतनी नवीन है कि 'नई कविता' के समान उसके साथ नया विशेषण जोड़ना एकदम निरर्थक होगा।

पर इस बीच मैंने पाया है कि 'नई कहानी' शब्द का व्यवहार खुले आम होने लगा है। 'आजकल' का सम्पादक होने के नाते पिछले कुछ वर्षों से मुझे हिन्दी साहित्य के लेखन और प्रकाशन की वर्तमान गतिविधि से सुपरिचित रहने की असाधारण सुविधाएं प्राप्त हैं। और मेरी धारणा है कि कहानी के साथ 'नई' संज्ञा का प्रयोग मुख्यतः उन लेखकों की ओर से हुआ है, जो कुछ वर्षों से कहानी लिख रहे है, पर उन्हें जितनी मान्यता प्राप्त हुई है, उससे वे सन्तुष्ट नहीं है।

अन्य सभी शब्दार्थों के समान 'नयापन' भी सापेक्ष है। इससे किसी वस्तु या भाव को नया या पुराना कहने में कोई हर्ज नहीं है। इसमें भी सन्देह नहीं कि पिछले कितने ही वर्षों से, विशेषतः दूसरे महायुद्ध से, ज्ञान-विज्ञान के

मेरे लिए यह बात दिलचस्प थी। पर मैंने उनसे कहा कि 'सम्पादन करना तो अब मेरा पेशा ही है।'

इसी बातचीत के सिलसिले में मैंने श्री हालडोर से कहा, 'साहित्य के सभी माध्यमों (कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना, संस्मरण आदि) में कहानी सबसे अधिक सौभाग्यशालिनी है।'

उन्होंने पूछा, 'यह किस तरह ?'

मैंने कहा, 'यह इस तरह कि साहित्य के अन्य माध्यमों का रूप उस पूर्णता से सार्वभौम नहीं है, जिस पूर्णता से कहानी सार्वभौम है। संसार के विभिन्न देशों में कविता, नाटक, उपन्यास आदि के रूप और प्रकार में काफी भेद है। पर कहानी का रूप पूरी तरह सार्वभौम है। यों तो साहित्य मात्र की पुकार सार्वभौम है, पर यह कहना अशुद्ध न होगा कि कहानी की पुकार सबसे अधिक सार्वभौम है। कहानी की टेकनीक संसार भर के सभी देशों में एक ही है, जबकि साहित्य के अन्य माध्यमों की टेकनीक के सम्बन्ध में मतभेद की काफी गुंजाइश है। इसका प्रमाण यह है कि एक अच्छी कहानी संसार भर की किसी भी भाषा मे अनुवादित होकर संसार भर के किसी भी देश में 'अच्छी कहानी' ही मानी जाएगी।'

श्री हालडोर ने जैसे बीच ही में टोकते हुए कहा, 'ठीक है साहब। पर यह तथ्य भी आप भूलिए नहीं कि एक अच्छी कहानी लिखना बहुत ही कठिन काम है।'

मैंने कहा, 'बिलकुल ठीक !'

श्री हालडोर ने कहा, 'मैं तो यहां तक कहूंगा कि अच्छी कहानियां बहुत कम लिखी जाती है। यह इस कारण कि साहित्य के सभी माध्यमों में सबसे कठिन माध्यम भी कहानी ही है।'

मुझे अपने से सहमत पाकर वह कहते चले गए, 'साहित्य के अन्य सभी माध्यमों में आपको इस बात का अवसर प्राप्त है कि आप चाहें तो बहक भी जाए। पर एक अच्छी कहानी तो एक सधी हुई लीक के समान है, जिसपर से जरा भी इधर-उधर होने की गुंजाइश नही है। एक भी वाक्य कहानी मे ऐसा हुआ, जिसका सीधा सम्बन्ध कहानी के केन्द्रीय भाव से नही है, तो बस आप पकड़ लिए जाएंगे। कवि कल्पना की आड़ ले सकता है; उपन्यासकार के

सम्मुख तो एक बहुत विशाल कैन्वस रहता ही है; निबन्ध में एक विषय का सम्बन्ध बहुत आसानी से चाहे जिस भी विषय से जोड़ लिया जा सकता है; नाटक में रंगमंच की दृष्टि से भिन्न रस ग्राह्य माने जाते हैं, पर कहानी में बहक जाने की रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं है। इसीसे मैं कहता हूं कि अच्छी कहानी लिखना सबसे अधिक कठिन काम है।'

श्री लैक्सनैस की उस बात से मैं लगभग पूरी तरह सहमत हूं। 'लगभग' इस लिए कि साहित्य के क्षेत्र में 'कठिनता' शब्द का व्यवहार खतरनाक है। इस क्षेत्र में रुचि तथा सहज प्रतिभा कितनी ही कठिन गहराइयों को इस तरह पार कर जाती है, जिस तरह कुशल तैराक सैकड़ों गज़ गहरे पानी में मज़े के साथ तैर जाता है। फिर भी यदि किसी आलोचक के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि कहानी लिखने के लिए गहरी सूझ-बूझ के साथ इस बात का ज्ञान रहना भी आवश्यक है कि कहानी एक लगभग अदृश्य लकीर पर चलने के समान है, इस लकीर को तलाश कर सकने की शक्ति कहानी-लेखक में होनी चाहिए।

कहानी क्या है और उसकी परिभाषा क्या है, इस सम्बन्ध में अपनी राय मैं 'तीन दिन' नामक पिछले कहानी-संग्रह में व्यक्त कर चुका हूं। उसी वक्तव्य मे मैंने कहा था कि कहानी स्वयं अपने में इतनी नवीन है कि 'नई कविता' के समान उसके साथ नया विशेषण जोड़ना एकदम निरर्थक होगा।

पर इस बीच मैंने पाया है कि 'नई कहानी' शब्द का व्यवहार खुले आम होने लगा है। 'आजकल' का सम्पादक होने के नाते पिछले कुछ वर्षों से मुझे हिन्दी साहित्य के लेखन और प्रकाशन की वर्तमान गतिविधि से सुपरिचित रहने की असाधारण सुविधाएं प्राप्त हैं। और मेरी धारणा है कि कहानी के साथ 'नई' संज्ञा का प्रयोग मुख्यतः उन लेखकों की ओर से हुआ है, जो कुछ वर्षों से कहानी लिख रहे है, पर उन्हें जितनी मान्यता प्राप्त हुई है, उससे वे सन्तुष्ट नहीं हैं।

अन्य सभी शब्दार्थों के समान 'नयापन' भी सापेक्ष है। इससे किसी वस्तु या भाव को नया या पुराना कहने में कोई हर्ज नहीं है। इसमें भी सन्देह नहीं कि पिछले कितने ही वर्षों से, विशेषतः दूसरे महायुद्ध से, ज्ञान-विज्ञान के

सभी क्षेत्रों में असाधारण प्रगति हुई है। इस युग में मानव-समाज मे जो बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं, उनके कारण आज के युग को 'नया युग' कहने मे भी अनौचित्य नही है। यों भी, अच्छा हो, चाहे बुरा हो, वर्तमान काल ही तो 'नया' होता है। इन अर्थों में आप चाहे तो आज के विश्व के सभी क्रिया-कलापो को 'नया' कहकर सम्बोधित कर सकते है।

इधर कला और साहित्य के क्षेत्र में भी बहुत-सा 'नयापन' इस युग मे आया है। इस नएपन ने चित्रकला का रूप ही बदल कर रख दिया है। सुर-रिअलिज़म, क्यूबिज़्म, और इम्प्रेशनिज्म आदि से चित्रकला जहां एक ओर अत्यन्त दुरूह और दुर्ज्ञेय बन गई है, वहां दूसरी ओर उसमे बोगसपन का बहुत बडा अवसर उत्पन्न हो गया है। अंकन की दृष्टि से आज की चित्रकला के चित्रण बहुत आसान प्रतीत होते है। एक साधारण दर्शक को यह प्रतीति होती है कि जिन लोगों का रेखांकन तक पर प्रभुत्व नही है, जो अनुपात और छाया-प्रकाश की सूक्ष्मताओं को भी पूरी तरह नहीं समझते, वे ऊंचे दर्जे के 'नये' चित्रकार मान लिए जाते हैं। पर मातीस और पिकासो जैसे महान् कलाकारो की नवीन शैलियो की कला का मूल्यांकन करने के लिए दर्शकों को अपनी परम्परागत रुचियों में निस्सन्देह कुछ परिवर्तन करना होगा। नई चित्रकला की कृतियों में साधारण दर्शक चाहे ज़रा भी रस न ले पाए, पर इसी आधार पर उसे बोगस नहीं कहा जा सकता। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि चित्रकला का यह नयापन इस क्षेत्र के परम्परागत चित्रों को किसी भी तरह अपने से हीन कोटि का सिद्ध नहीं कर सकता। बल्कि लोकप्रियता और मूल्य की दृष्टि से परम्परागत शैलियां अभी तक बढ़ रही हैं।

नएपन से प्रभावित होने की दृष्टि से चित्रकला के बाद दूसरा स्थान कविता का है। नई कविता को लेकर हिन्दी-जगत् में काफी वाद-विवाद हो चुका है। छन्द, अलंकार, अनुप्रास आदि के बन्धनों में कैद कविता आज के युग मे जिस तरह सर्वग्राही और निर्बन्ध बन गई है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। मेरा ख्याल है कि आज की इस नई कविता की कोई एक परिभाषा तक कर सकना भी बहुत कठिन है। वस्तु और शैली दोनों की दृष्टि से आज की नई कविता प्राचीन धारणाओं से एकदम भिन्न है। नई कविता का एक खासा बडा भाग साधारण पाठकों के लिए दुर्ज्ञेय है। इसी दुर्ज्ञेयता की आड़ लेकर

आज कविता के नाम से अर्थ प्रलाप प्रतीत होने वाली रचनाएं भी प्रकाश मे आने लगी हैं। पर उसके लिए आप नई कविता को दोष नहीं दे सकते। फिर भी यह स्पष्ट है कि यह 'नई कविता' पुरानी कविता से अधिक लोकप्रिय, अधिक उन्नत अथवा अधिक प्रभावशालिनी नहीं है। साथ ही इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस नई कविता के स्थायित्व की परीक्षा होना अभी बाकी है, जबकि वाल्मीकि, व्यास, होमर, कालिदास, शेक्सपियर, तुलसी आदि की कविताएं महाकाल की इस एकमात्र सच्ची परीक्षा में पूरी तरह उत्तीर्ण हो चुकी हैं।

साहित्य, कला, नृत्य, सगीत आदि सभी ललित कलाओं पर इस नएपन का जो कम-अधिक प्रभाव पड़ा है, उसकी चर्चा किए बिना मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि कहानी के क्षेत्र मे 'नई कहानी' नाम की कोई वस्तु नही है, क्योकि साहित्य का 'कहानी' नामक वह माध्यम (जिसे अंग्रेजी में 'शार्ट स्टोरी' कहते हैं) स्वयं पूर्णतः एक नया माध्यम है, जिसका जन्म हुए अभी १०० बरस भी नही बीते हैं। 'नई कहानी' का अभिप्राय यदि वर्तमान युग की कहानी को पुरानी या मध्यकालीन कथा-कहानियों से पृथक् करना होता, तो उसमें कुछ अर्थ भी था। पर जब नई कहानी को आज के युग में उत्पन्न कहानी नामक साहित्यिक माध्यम से पृथक् रूप में पेश किया जाता है, तो उसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि ऐसा करने वाला व्यक्ति कहानी की नवीनता और सार्वभौमिकता से अनजान है और वह इस माध्यम के सधे हुए रूप तथा व्यापक क्षेत्र से भी अनभिज्ञ है।

और फिर कोई चीज नई है, इसी कारण अच्छी नहीं कही जा सकती और कोई चीज पुरानी है, इसी कारण वह हेय नहीं मानी जा सकती। साहित्य की पुकार सार्वभौम और सर्वकालीन है क्योंकि वह स्थायी अनुभूतियो और चिरन्तन सत्यों का चित्रण करता है। किसी रचना के स्थायित्व और महत्त्व का वास्तविक अन्दाज तभी मिलता है, जब देश और काल की सीमा को अतिक्रान्त कर लेने के बाद भी वह प्रभावशाली और रसोत्पादक सिद्ध होती है। इन परिस्थितियों में 'नए' और 'पुराने' की बहस का अधिक महत्त्व नही है। कहानी इसी युग की उपज है। कहानी की परम्पराएं, कहानी की टेकनीक, कहानी का क्षेत्र और कहानी की पुकार—ये सब सार्वभौम है। किसी

कहानी पर समकालीन परिस्थितियों और सवालों का सीधा प्रभाव अवश्य पड़ सकता है, और आज से पूर्व लिखी गई कहानियों में आज की घटनाओं का हवाला आप निस्संदेह प्राप्त नहीं कर सकते। पर कहानी क्या है, यह समझ लेने के बाद आपको इन बातों का महत्त्व अधिक प्रतीत नही होगा, क्योंकि साहित्य का यह माध्यम प्रायः वहीं सफल और प्रभावशाली सिद्ध होता है, जहां यह आधारभूत सत्यो और तत्त्वों को छूता है।

मेरे इस संग्रह में जो कहानियां है, उन्हें मैं किसी तरह के आदर्श या चैलेंज के रूप मे पेश नहीं कर रहा हूं। इनमें से कितनी ही कहानियों की पृष्ठभूमि मैं दे तो सकता हूं, पर उस प्रलोभन का भी मै संवरण कर रहा हूं। इन कहानियों को लिखते हुए और इन्हें पूरा कर जो आनन्द और जो सन्तोष मुझे प्राप्त हुआ था, वह मेरे जीवन की अमूल्य सम्पत्ति है।

रक्षा बन्धन
४, पटौदी हाउस
नई दिल्ली

—*चन्द्रगुप्त विद्यालंकार*

कहानी-क्रम

वापसी

वासिली अब एक बहादुर सिपाही था। पेशे से वह फौजी नहीं था, खारकोव के नजदीक लिखोविडोवका नामक एक गांव का वह एक महत्त्वपूर्ण किसान था। बीजों, पौधों और जानवरों की बीमारियों का विशेषज्ञ होने के कारण सारे गांव में उसकी धाक और प्रतिष्ठा थी। वासिली का घर गांव भर के लोगों को मुफ्त, परन्तु बहुमूल्य सलाह-मशविरा देने का अड्डा बना रहता था। वही वासिली २० जून, १९४१ को, जिस दिन जर्मनी ने रूस पर अचानक हमला कर दिया, रूसी फौज में शामिल हो गया। अपनी सुन्दर पत्नी और दो लड़कियों से विदा लेकर वह खारकोव चला गया।

बहुत जल्द यह साबित हो गया कि वासिली बहुत ऊंचे दर्जे का एक सिपाही है। उसका ओहदा बढ़ा दिया गया और उसे फ्रण्ट पर भेज दिया गया। पूरे २८ महीनों तक वासिली फ्रण्ट पर रहा। इस लम्बे अरसे में रूसी फौजों को लगातार पीछे हटना पड़ा। पीछे हटते हुए रूसी फौजों को जल्दी-जल्दी में पचासों काम करने होते थे। उनकी कोशिश रहती थी कि दुश्मन के हाथ एक भी ऐसी चीज न लगे, जिससे उसका बल बढ़े। किस चीज की गांव वालों को जरूरत है और कौन-कौन-सी चीजें दुश्मन के काम आ सकती हैं, इस बारे मे वासिली एक विशेषज्ञ माना जाने लगा। फौज में उसकी प्रतिष्ठा और अधिक बढ गई।

वासिली की इस बढ़ी हुई प्रतिष्ठा से उसे यह नुकसान पहुंचा कि वह अपनी फौज के लिए लगभग अपरिहार्य हो गया। उसे छुट्टी मिलना असम्भव हो गया। जिस तरह एक बड़े टैंक को लड़ाई के मैदान से दूर ले जाने की कल्पना भी नही की जा सकती, उसी तरह वासिली को फ्रण्ट से दूर भेज सकना लगभग असम्भव माना जाने लगा।

पीछे हटते हुए अपना सभी कुछ बरबाद करते जाने की रूसी नीति से क्रमशः जर्मन फौजी इतने जल-भुन गए कि वे निरीह रूसी बूढ़ों, बच्चों और स्त्रियों पर मनमाना जुल्म करने लगे। रूसी गुरिल्ला जीती हुई जर्मन फौजो को इतना परेशान करते थे कि कभी-कभी तो जर्मनों की जीत उन्हें हार के समान महगी पड़ती थी। इसका गुस्सा जर्मन फौजी निरीह रूसी स्त्रियों, बूढ़ों और बच्चों पर निकालते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत जल्द रूसी और जर्मन एक दूसरे से गहरी नफरत करने लगे। यह रूसी और जर्मन-दुश्मनी साप और नेवले की दुश्मनी से कहीं बढ़कर हो गई।

रूसी किसानों पर जुल्म करते हुए अगर कोई जर्मन रूसी सैनिकों के हाथ पड़ जाता, तो उसकी बुरी गत बनाई जाती थी। परन्तु वासिली उन लोगों में से था, जो ऐसे मौकों पर भी अपने साथियों को किसी जर्मन पर जुल्म न करने देता था। वासिली प्रायः कहा करता था, 'जर्मनों की तरह अगर हम भी जगली पशु बन गए, तो हममें और नाजियों मे फ़र्क ही क्या रह गया? हम कम्यूनिस्ट सिपाहियों को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिससे सिपाहियों की बहादुराना संस्था की प्रतिष्ठा को दाग लगे।'

क्रमशः जर्मन आगे बढ़ते आए। वासिली का गांव, कस्बा, प्रांत सब का सब नाजियों के अधिकार में चला गया। वासिली को अपनी पत्नी और बच्चों की खबरें मिलनी बन्द हो गई। वासिली पर एक तरह का जनून सवार हो गया। बीसों बार वह मौत के मुह में कूदा, मगर कामयाबी के साथ जिन्दा बच आया। आखिर वासिली को यह सौभाग्य भी प्राप्त हुआ कि वह संसार के अब तक के संपूर्ण इतिहास की सबसे अधिक बहादुराना लड़ाई—स्तालिनग्राद की लड़ाई—में भी हिस्सा ले सके। हजारों तोपों, सैकड़ों टैंकों और अनगिनत हवाईजहाजों की दिन-रात की अग्निवर्षा से स्तालिनग्राद की अधिकांश गगनचुम्बी इमारतें ज़मींदोज हो गई, मगर वासिली जैसे सिपाहियों ने स्तालिनग्राद में बहादुरी का एक नया स्टैण्डर्ड कायम करके दिखा दिया। स्तालिनग्राद भूमिसात हो गया, मगर जीत भी स्तालिनग्राद की ही हुई।

स्तालिनग्राद की इस जीत ने जैसे रूस की किस्मत ही बदल दी। भाग्य का चक्र अब दूसरी ओर को घूम गया। वासिली के बटालियन के कमाण्डर को अब वासिली का भी ध्यान आया। उसे बहादुरी का सबसे बड़ा तमगा दिया

गया और इसके साथ ही उसे यह भी बताया गया कि उसकी फौज अब खारकोव की ओर रवाना हो रही है, और खारकोव पहुंचने के साथ ही साथ वह अपने परिवार से मिलने के लिए दस दिन की छुट्टी ले सकेगा।

भागते हुए जर्मनों का पीछा करते हुए वासिली की फौज बिजली की तेजी से खारकोव तक आ पहुंची। मालूम हुआ कि वासिली के गांव पर अभी तक जर्मनों का कब्जा है। अपने कमाण्डर से इजाजत लेकर अपने कुछ चुने हुए साथियों के साथ वासिली उसी रात अपने गांव के लिए रवाना हो गया।

जब वासिली अपने साथियों के साथ लिखोविडोवका गांव के नज़दीक पहुंचा, तो सुबह हो गई थी, मगर सूरज अभी तक गहरी धुन्ध में छिपा हुआ था। आसमान से तेजी के साथ बरफ गिर रही थी, फिर भी दूर ही से वासिली ने देखा कि गांव के कई हिस्सों से गहरा धुआं और आग के शोले निकल रहे हैं। वह समझ गया कि जर्मन गांव से भाग गए हैं और भागते हुए गांव को आग लगाते गए। यह गनीमत थी कि गिरती हुई बरफ के कारण यह आग अधिक फैलने नहीं पाई थी।

सबसे पहले वासिली और उसके साथियों ने आग बुझाने में मदद दी। बरफ गिरने का वेग और भी अधिक बढ़ गया था, इस कारण आग बुझाने में इन लोगों को अधिक वक्त नहीं लगा। आग बुझने के साथ ही साथ वासिली के दिल में स्वभावतः यह इच्छा पैदा हुई कि वह अपने बीवी-बच्चों से जाकर मिले। वह उधर जाने ही वाला था कि नज़दीक के अर्द्धदग्ध मकान की ओट में से उसे किसी औरत के सिसक-सिसककर रोने की आवाज आई। रहमदिल वासिली से रहा नहीं गया। वह उसी ओर चल पड़ा।

मकान के पीछे एक खुली जगह थी। वासिली ने देखा, उसी खुली जगह में बैठी एक औरत सिसक रही है। मालूम होता है, वह बहुत देर से रो रही थी, और रोते-रोते उसकी ताकत ने जवाब दे दिया था। अब वासिली को देखकर वह फिर से ऊंचे स्वर में रोने लगी।

वासिली ने रूस और जर्मनी की लड़ाई में पूरे २६ महीनों तक हिस्सा लिया है और इस अरसे में भयंकर से भयंकर वारदातें देखी हैं, मगर ऐसा भयंकर दृश्य तो शायद उसने भी कभी नहीं देखा। मैदान में सब जगह श्वेत बरफ बिछी हुई है और उस बरफ पर दो बच्चों की अधजली काली लाशें पड़ी

पीछे हटते हुए अपना सभी कुछ बरबाद करते जाने की रूसी नीति से क्रमशः जर्मन फौजी इतने जल-भुन गए कि वे निरीह रूसी बूढ़ों, बच्चों और स्त्रियों पर मनमाना जुल्म करने लगे। रूसी गुरिल्ला जीती हुई जर्मन फौजों को इतना परेशान करते थे कि कभी-कभी तो जर्मनों की जीत उन्हें हार के समान महंगी पड़ती थी। इसका गुस्सा जर्मन फौजी निरीह रूसी स्त्रियों, बूढ़ों और बच्चों पर निकालते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत जल्द रूसी और जर्मन एक दूसरे से गहरी नफरत करने लगे। यह रूसी और जर्मन-दुश्मनी सांप और नेवले की दुश्मनी से कहीं बढ़कर हो गई।

रूसी किसानों पर जुल्म करते हुए अगर कोई जर्मन रूसी सैनिकों के हाथ पड़ जाता, तो उसकी बुरी गत बनाई जाती थी। परन्तु वासिली उन लोगों में से था, जो ऐसे मौकों पर भी अपने साथियों को किसी जर्मन पर जुल्म न करने देता था। वासिली प्रायः कहा करता था, 'जर्मनों की तरह अगर हम भी जंगली पशु बन गए, तो हममें और नाजियों में फर्क ही क्या रह गया? हम कम्यूनिस्ट सिपाहियों को कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए, जिससे सिपाहियों की बहादुराना संस्था की प्रतिष्ठा को दाग लगे।'

क्रमशः जर्मन आगे बढ़ते आए। वासिली का गांव, कस्बा, प्रांत सब का सब नाजियों के अधिकार में चला गया। वासिली को अपनी पत्नी और बच्चों की खबरें मिलनी बन्द हो गईं। वासिली पर एक तरह का जनून सवार हो गया। बीसों बार वह मौत के मुंह में कूदा, मगर कामयाबी के साथ जिन्दा बच आया। आखिर वासिली को यह सौभाग्य भी प्राप्त हुआ कि वह संसार के अब तक के संपूर्ण इतिहास की सबसे अधिक बहादुराना लड़ाई—स्तालिनग्राद की लड़ाई—में भी हिस्सा ले सके। हजारों तोपों, सैकड़ों टैंकों और अनगिनत हवाईजहाजों की दिन-रात की अग्निवर्षा से स्तालिनग्राद की अधिकांश गगनचुम्बी इमारतें जमींदोज हो गईं, मगर वासिली जैसे सिपाहियों ने स्तालिनग्राद में बहादुरी का एक नया स्टैण्डर्ड कायम करके दिखा दिया। स्तालिनग्राद भूमिसात हो गया, मगर जीत भी स्तालिनग्राद की ही हुई।

स्तालिनग्राद की इस जीत ने जैसे रूस की किस्मत ही बदल दी। भाग्य का चक्र अब दूसरी ओर को घूम गया। वासिली के बटालियन के कमाण्डर को अब वासिली का भी ध्यान आया। उसे बहादुरी का सबसे बड़ा तमगा दिया

वासिली ने किवाड़ खटखटाया—दूसरी बार, तीसरी बार, चौथी बार, मगर कहीं से कोई जवाब नहीं आया। वासिली सहन में उतर आया और उसने आवाज़ दी, 'अन्ना! प्यारी अन्ना!' यह उनकी पत्नी का नाम था। उसकी ऊंची आवाज़ अब बुरी तरह कांप रही थी।

अगले ही क्षण उसे एक चिरपरिचित स्वर सुनाई दिया—'हुजूर!'

वासिली ने देखा, उसका बूढ़ा पड़ोसी सोवर चला आ रहा है। वासिली ने बड़ी बेकली से पूछा, 'कहो सोवर, मेरी अन्ना कहां है? लिज़ा और मार्या कहां है?'

सोवर ने कहा, 'बाग के पीछे एक गढ़े में वे छिपे हुए हैं। तुम्हारे मकान में जर्मन कमाण्डर ने अपना अड्डा बना लिया था, उसीके डर से वे अब तक वहीं छिपे हुए हैं। तुम जरा ठहरो, मैं उन्हें बुला लाता हूं।'

वासिली की जान में जान आई। बड़ी उद्विग्नता के साथ वह अपनी पत्नी और बच्चों का इन्तज़ार करने लगा। बहुत जल्द उसने एक नारी-मूर्ति को अपनी ओर आते हुए देखा। ओह, क्या यही अन्ना है। अन्ना को वह एक युवती के रूप में यहां छोड़ गया था। उसी अन्ना के चेहरे पर अब झुर्रियां पड़ी हुई हैं। उसका हाथ पकड़कर यह जो कमज़ोर-सी लड़की चली आ रही है, यह मार्या होगी। अब पांच साल की मालूम होती है। वासिली के चेहरे पर मुस्कराहट छा गई। आगे बढ़कर उसने अपनी पत्नी को छाती से लगा लिया। मगर यह क्या? अपने प्राणप्रिय के आलिंगन में बद्ध होकर भी अन्ना के चेहरे पर मुस्कराहट की झलक तक नहीं आई। वासिली को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह किसी चेतना-रहित, ठण्डी देह का आलिंगन कर रहा हो। वासिली ने अपनी छोटी लड़की को गोद में उठा लिया और अन्ना से पूछा, 'लिज़ा कहां है? अब तो वह बहुत बड़ी हो गई होगी।'

अन्ना की जड़वत् आंखों में आंसू भर आए। उसने बोलना चाहा, पर मुंह से आवाज़ नहीं निकली। होंठ ज़रा-से कांपकर रह गए। सिर्फ उंगलियों से वह बाग की ओर कांपता-सा इशारा कर पाई। वासिली ने समझा कि शायद लिज़ा बीमार है। वह अन्ना का हाथ पकड़कर उसे मकान के पीछे की ओर ले चला। पड़ोसी सोवर चुपचाप साथ-साथ चल रहा था।

बाग का मैदान बरफ से ढका हुआ था। क्षण भर के लिए वासिली को

पीछे हटते हुए अपना सभी कुछ बरबाद करते जाने की रूसी नीति से क्रमशः जर्मन फौजी इतने जल-भुन गए कि वे निरीह रूसी बूढों, बच्चों और स्त्रियों पर मनमाना जुल्म करने लगे। रूसी गुरिल्ला जीती हुई जर्मन फौजो को इतना परेशान करते थे कि कभी-कभी तो जर्मनों की जीत उन्हे हार के समान महंगी पडती थी। इसका गुस्सा जर्मन फौजी निरीह रूसी स्त्रियो, बूढों और बच्चों पर निकालते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत जल्द रूसी और जर्मन एक दूसरे से गहरी नफरत करने लगे। यह रूसी और जर्मन-दुश्मनी साप और नेवले की दुश्मनी से कहीं बढकर हो गई।

रूसी किसानों पर जुल्म करते हुए अगर कोई जर्मन रूसी सैनिको के हाथ पड जाता, तो उसकी बुरी गत बनाई जाती थी। परन्तु वासिली उन लोगो मे से था, जो ऐसे मौकों पर भी अपने साथियों को किसी जर्मन पर जुल्म न करने देता था। वासिली प्राय. कहा करता था, 'जर्मनों की तरह अगर हम भी जगली पशु बन गए, तो हममे और नाजियों में फर्क ही क्या रह गया ? हम कम्युनिस्ट सिपाहियों को कोई ऐसा काम नही करना चाहिए, जिससे सिपाहियो की बहादुराना संस्था की प्रतिष्ठा को दाग लगे।'

क्रमशः जर्मन आगे बढ़ते आए। वासिली का गांव, कस्बा, प्रांत सब का सब नाजियों के अधिकार में चला गया। वासिली को अपनी पत्नी और बच्चों की खबरें मिलनी बन्द हो गई। वासिली पर एक तरह का जनून सवार हो गया। बीसों बार वह मौत के मुंह में कूदा, मगर कामयाबी के साथ ज़िन्दा बच आया। आखिर वासिली को यह सौभाग्य भी प्राप्त हुआ कि वह ससार के अब तक के संपूर्ण इतिहास की सबसे अधिक बहादुराना लडाई—स्तालिनग्राद की लडाई—में भी हिस्सा ले सके। हज़ारों तोपों, सैकड़ों टैकों और अनगिनत हवाईजहाज़ों की दिन-रात की अग्निवर्षा से स्तालिनग्राद की अधिकाश गगनचुम्बी इमारतें ज़मींदोज़ हो गईं, मगर वासिली जैसे सिपाहियों ने स्तालिनग्राद में बहादुरी का एक नया स्टैण्डर्ड कायम करके दिखा दिया। स्तालिनग्राद भूमिसात हो गया, मगर जीत भी स्तालिनग्राद की ही हुई।

स्तालिनग्राद की इस जीत ने जैसे रूस की किस्मत ही बदल दी। भाग्य का चक्र अब दूसरी ओर को घूम गया। वासिली के बटालियन के कमाण्डर को अब वासिली का भी ध्यान आया। उसे बहादुरी का सबसे बडा तमगा दिया

गया और इसके साथ ही उसे यह भी बताया गया कि उसकी फौज अब खारकोव की ओर रवाना हो रही है, और खारकोव पहुंचने के साथ ही साथ वह अपने परिवार से मिलने के लिए दस दिन की छुट्टी ले सकेगा।

भागते हुए जर्मनों का पीछा करते हुए वासिली की फौज बिजली की तेज़ी से खारकोव तक आ पहुंची। मालूम हुआ कि वासिली के गांव पर अभी तक जर्मनों का कब्ज़ा है। अपने कमाण्डर से इजाज़त लेकर अपने कुछ चुने हुए साथियों के साथ वासिली उसी रात अपने गाव के लिए रवाना हो गया।

जब वासिली अपने साथियों के साथ लिखोविडोवका गाव के नज़दीक पहुचा, तो सुबह हो गई थी, मगर सूरज अभी तक गहरी धुन्ध में छिपा हुआ था। आसमान से तेज़ी के साथ बरफ गिर रही थी, फिर भी दूर ही से वासिली ने देखा कि गांव के कई हिस्सों से गहरा धुआ और आग के शोले निकल रहे हैं। वह समझ गया कि जर्मन गांव से भाग गए हैं और भागते हुए गांव को आग लगाते गए। यह गनीमत थी कि गिरती हुई बरफ के कारण यह आग अधिक फैलने नहीं पाई थी।

सबसे पहले वासिली और उसके साथियों ने आग बुझाने में मदद दी। बरफ गिरने का वेग और भी अधिक बढ़ गया था, इस कारण आग बुझाने में इन लोगों को अधिक वक्त नहीं लगा। आग बुझने के साथ ही साथ वासिली के दिल में स्वभावतः यह इच्छा पैदा हुई कि वह अपने बीवी-बच्चों से जाकर मिले। वह उधर जाने ही वाला था कि नज़दीक के अर्द्धदग्ध मकान की ओट में से उसे किसी औरत के सिसक-सिसककर रोने की आवाज़ आई। रहमदिल वासिली से रहा नहीं गया। वह उसी ओर चल पड़ा।

मकान के पीछे एक खुली जगह थी। वासिली ने देखा, उसी खुली जगह में बैठी एक औरत सिसक रही है। मालूम होता है, वह बहुत देर से रो रही थी, और रोते-रोते उसकी ताकत ने जवाब दे दिया था। अब वासिली को देखकर वह फिर से ऊंचे स्वर में रोने लगी।

वासिली ने रूस और जर्मनी की लड़ाई में पूरे २६ महीनों तक हिस्सा लिया है और इस अरसे में भयंकर से भयंकर वारदातें देखी है, मगर ऐसा भयंकर दृश्य तो शायद उसने भी कभी नहीं देखा। मैदान में सब जगह श्वेत बरफ बिछी हुई है और उस बरफ पर दो बच्चों की अधजली काली लाशें पड़ी

है—छह साल का एक लड़का और चार साल की फूल की कली-सी एक लड़की। और रोने वाली इन दोनों बच्चों की मां है। मां ने बताया, 'कल रात जब जर्मन यहां से जाने लगे, तो उन्होंने हमारे मकानों में आग लगानी शुरू की। हम सब लोग तो भागकर छिप गए। ये बच्चे कहीं दूर पर खेल रहे थे, मेरा ख्याल था कि ये अपनी चाची के घर गए हैं। मैं अभागी दूर के उस गढ़े में जाकर छिप रही। वहां से मैं सब कुछ देख रही थी। घर में आग लगी देखकर ये बच्चे दौड़कर इधर आए और एक दूसरे से चिपककर, डरी हुई निगाह से मकान की ओर देख ही रहे थे कि पांच-सात जर्मन फौजियों ने इन्हें पकड़ लिया। बच्चों को देखते ही मैं गढ़े से निकलकर उनकी ओर बढ़ी, पर जर्मन फौजियों को देखकर मैं फिर से गढ़े में जा छिपी। मुझे यकीन था कि आखिर ये पशु नहीं हैं। ये निरीह बच्चों को तो छोड़ ही देंगे। दो-तीन मिनट तक उन जर्मनों में कोई सलाह-मशविरा होता रहा। उसके बाद दो जर्मनों ने इन दोनों बच्चों को उठाकर एकदम इसी जलती हुई आग में फेंक दिया। जलते हुए मकान की रोशनी में मैंने यह सब देखा। मैंने अपने कानों से इन मासूम बच्चों की आखरी चीखें भी सुनीं। बच्चों को आग में फेंकते ही वे जर्मन यहां से चले गए। मैं चिल्लाई, कुछ पड़ोसी इधर-उधर से निकलकर मेरी मदद को भी आए। हम लोगों ने धधकती आग से इन बच्चों को निकाल तो लिया, मगर आप लोग देख ही रहे हैं कि ये किस हालत में हैं।'

बहादुर वासिली से वहां खड़ा न रहा गया। उसने अनुभव किया कि दो मासूम बच्चों की इन अधजली लाशों को यदि उसने क्षण भर भी और देखा, तो वह पागल हो जाएगा। एक शब्द भी बोले बिना उसने 'अबाउट टर्न' की और वहां से इतनी तेजी से रवाना हुआ, जैसे किसी भूत से डरकर भाग रहा हो। वह अपने परिवार के लिए अत्यधिक चिन्तित हो उठा था। एक सांस में भागकर जब वह अपने मकान के नजदीक पहुंचा, तो यह देखकर उसे जरा तसल्ली हुई कि न सिर्फ उसका मकान ही सही-सलामत है बल्कि उसका बाग-बगीचा सब ठीक हालत में है। मगर उसी क्षण उसने यह अनुभव किया कि यह क्या? यह सन्नाटा कैसा है? एकदम मौत का-सा सन्नाटा।

बरामदे में पहुंचकर वासिली ने बड़ी घबराई हुई-सी दशा में किवाड़ खटखटाया, पर कोई उत्तर नहीं मिला। क्रमशः अधिकाधिक ऊंची आवाज में

वासिली ने किवाड़ खटखटाया—दूसरी बार, तीसरी बार, चौथी बार, मगर कहीं से कोई जवाब नहीं आया। वासिली सहन में उतर आया और उसने आवाज़ दी, 'अन्ना ! प्यारी अन्ना !' यह उसकी पत्नी का नाम था। उसकी ऊंची आवाज़ अब बुरी तरह कांप रही थी।

अगले ही क्षण उसे एक चिरपरिचित स्वर सुनाई दिया—'हुज़ूर !'

वासिली ने देखा, उसका बूढ़ा पड़ोसी सोवर चला आ रहा है। वासिली ने बड़ी बेकली से पूछा, 'कहो सोवर, मेरी अन्ना कहां है ? लिज़ा और मार्या कहां हैं ?'

सोवर ने कहा, 'बाग के पीछे एक गढ़ में वे छिपे हुए हैं। तुम्हारे मकान में जर्मन कमाण्डर ने अपना अड्डा बना लिया था, उसीके डर से वे अब तक वहीं छिपे हुए हैं। तुम जरा ठहरो, मैं उन्हें बुला लाता हूं।'

वासिली की जान में जान आई। बड़ी उद्विग्नता के साथ वह अपनी पत्नी और बच्चों का इन्तज़ार करने लगा। बहुत जल्द उसने एक नारी-मूर्ति को अपनी ओर आते हुए देखा। ओह, क्या यही अन्ना है। अन्ना को वह एक युवती के रूप में यहां छोड़ गया था। उसी अन्ना के चेहरे पर अब झुर्रियां पड़ी हुई हैं। उसका हाथ पकड़कर यह जो कमज़ोर-सी लड़की चली आ रही है, यह मार्या होगी। अब पांच साल की मालूम होती है। वासिली के चेहरे पर मुस्कराहट छा गई। आगे बढ़कर उसने अपनी पत्नी को छाती से लगा लिया। मगर यह क्या ? अपने प्राणप्रिय के आलिंगन में बद्ध होकर भी अन्ना के चेहरे पर मुस्कराहट की झलक तक नहीं आई। वासिली को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह किसी चेतना-रहित, ठण्डी देह का आलिंगन कर रहा हो। वासिली ने अपनी छोटी लड़की को गोद में उठा लिया और अन्ना से पूछा, 'लिज़ा कहां है ? अब तो वह बहुत बड़ी हो गई होगी।'

अन्ना की जड़वत् आंखों में आंसू भर आए। उसने बोलना चाहा, पर मुंह से आवाज़ नहीं निकली। होंठ ज़रा-से कांपकर रह गए। सिर्फ उंगलियों से वह बाग की ओर कांपता-सा इशारा कर पाई। वासिली ने समझा कि शायद लिज़ा बीमार है। वह अन्ना का हाथ पकड़कर उसे मकान के पीछे की ओर ले चला। पड़ोसी सोवर चुपचाप साथ-साथ चल रहा था।

बाग का मैदान बरफ से ढका हुआ था। क्षण भर के लिए वासिली को

मालूम हुआ कि वह कोई सपना देख रहा है। आज सुबह का देखा हुआ वह महाभयंकर और हृदयविदारक दृश्य जैसे उसका पीछा ही नहीं छोड़ना चाहता। यहां भी तो बाग के कोने में सफेद-सफेद बरफ पर एक बच्चे की अधजली लाश पड़ी है।

सहसा अन्ना चीखकर रो पड़ी, बच्ची मार्या सिसकने लगी और बूढ़ा सोवर आंसू पोंछने लगा। तब जाकर वासिली समझा कि वह सपना नहीं देख रहा। यह सब अटल और ध्रुव सत्य है। सामने उसकी प्यारी बेटी लिज़ा का अधजला शरीर पड़ा है। उसकी लिजा सचमुच बड़ी हो गई थी, उसका शरीर निखर आया था। कल तक वह जिन्दा थी। पूरे २६ महीनों तक वह बाप के वापस आने का इन्तज़ार करती रही। और उसके बाद····?

वासिली एकाएक बहुत गम्भीर हो गया। सिपाही की पूरी चेतना जाग्रत हो गई। अपने पर पूरा नियन्त्रण रखकर उसने अपनी रोती हुई पत्नी के कन्धे पर हाथ रखा और कहा, 'अन्ना, धीरज धरो और मुझे बताओ कि आखिर यह हुआ क्या है?'

अन्ना फिर भी चुप रही, पर बूढ़े सोवर ने कहना शुरू किया, 'जर्मन कमाण्डर ने तुम्हारे मकान को अड्डा बना लिया, तो अन्ना और बच्चे बाग की उन कोठरियों के पिछले हिस्से के एक गढ़े में छिपकर रहने लगे। गांव के सब लोगों की कोशिश थी कि जर्मनों को यह पता न लगे कि अन्ना का पति फौजी अफसर है। जिस तकलीफ से अन्ना और उसके बच्चों को ये दिन काटने पड़े···'

वासिली ने बीच ही में टोककर कहा, 'वे सब बातें जाने दो चचा! मुझे सिर्फ इतना ही बताओ कि लिज़ा को क्या हुआ है?'—और इतना कहकर वह लिज़ा की लाश के एकदम समीप जा बैठा और धीरे-धीरे उसके अधजले चेहरे पर हाथ फेरने लगा।

क्षण भर तक सोवर चुप रहा, जैसे आगे कहने की ताकत जमा कर रहा हो। उसके बाद कांपती आवाज़ से वह बोला, 'परसों जर्मन कमाण्डर का जन्मदिन था। रात को उसने अपने कुछ दोस्तों के साथ खूब शराब पी। जब सब लोग चले गए और वह अकेला रह गया, तो उसने अपने जर्मन अर्दली से कहा कि कोई लड़की पकड़कर लाओ। आधी रात का वक्त था। अर्दली को

अन्ना और बच्चों की जगह मालूम थी। वह बदमाश वहां जा पहुंचा। ये सब लोग वहां गहरी नींद में सोए हुए थे कि वह चुपचाप १५ बरस की लिज़ा को वहां से उठा लाया। बाहर आते ही ठण्डी हवा के झोंके से लिज़ा जाग गई, तो अर्दली ने उसका मुंह दबा दिया, ताकि वह चिल्ला न सके।

'लिज़ा थी तो सिर्फ पन्द्रह बरस की, मगर उसके जिस्म का उभार बहुत आकर्षक रूप से निखर आया था। जर्मन कमाण्डर ने जब उसपर बलात्कार करना चाहा, तब पहले तो वह बहुत अनुनय-विनय करती रही। परन्तु जब वह शराबी शैतान बाज नहीं आया और उसने लिज़ा को अपनी ओर खींचा, तो लिज़ा ने इतनी ज़ोर से उसके गालों पर दांत गड़ाए कि उस बदमाश का एक गाल कट ही गया। तब उस जानवर ने उसी वक्त पिस्तौल निकाली और लिज़ा का काम तमाम कर दिया। जब उसे होश आया, तो अपना यह अपराध छिपाने के लिए उसने लिज़ा की फूल-सी देह को कम्बल में लिपटवाकर उसपर पेट्रोल छिड़कवाया और आग लगा दी।'

इतना कहकर सोबर चुप हो गया। यह सब सुनकर भी वासिली चुपचाप बैठा रहा। न वह चिल्लाया, न रोया और न सिसका ही। चुपचाप अपलक नयनों से वह अपनी प्यारी लिज़ा के अधजले शरीर की ओर देखता रह गया।

अन्ना अब तक संभल गई थी। वह अपने पति के पास आ खड़ी हुई और उसके बालों में प्यार से उंगलियां चलाने लगी। परन्तु अब पूरा प्रयत्न करके भी वह वासिली का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाई। वासिली अब भी उसी तरह एकटक लिज़ा के अधजले शरीर की ओर देख रहा था। चुपचाप। न उसकी आंखों में आंसू थे और न उसके कण्ठ में स्वर था।

सहसा वासिली को अनुभव हुआ, जैसे यह सामने पड़ा हुआ, अधजला, मसले हुए फूल-सा जिस्म उसकी लाड़ली बेटी लिज़ा का जिस्म नहीं है, यह तो उसकी महामहिमाशालिनी मां—रूस माता के हज़ारों-लाखों निरीह बच्चों का प्रतीक है! और वासिली जानता है कि वह कौन-सा महादानव है, जिसने रूस-माता के घर के विशाल आंगन को एक महाश्मशान के रूप में परिणत कर दिया है।

वासिली ने अपने में एक नई शक्ति और नई जलन का अनुभव किया और वह चुपचाप उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी पत्नी को यह भी नहीं बताया कि

वह छुट्टी लेकर आया है। मार्या को प्यार कर और अन्ना से विदा लेकर वह उसी वक्त खारकोव के लिए रवाना हो गया।

वासिली के बटैलियन के कमाण्डर को यह देखकर बहुत हैरानी हुई कि वासिली छुट्टी के पहले ही रोज खारकोव वापस लौट आया है और अनुरोध कर रहा है कि उसकी छुट्टी मंसूख कर दी जाए। जब तक लड़ाई जारी है, उसे एक क्षण की भी छुट्टी नहीं चाहिए। २६ महीने ही क्या, अगर लड़ाई २६ बरसों तक भी जारी रहे, तब भी वह ज़िन्दा रहते नाज़ी जर्मनी के खिलाफ होने वाली इस लड़ाई में कभी एक लहमे की भी छुट्टी नहीं मांगेगा !

वासिली अब एक बदला हुआ शख्स था। उसकी बहादुरी और उसकी समझदारी पहले से भी बढ़ गई थी, परन्तु उसपर एक तरह का जनून सवार हो गया था। 'जर्मन' नाम से ही जैसे उसे गहरी नफरत हो गई थी। अपनी डायरी में उसने ये तीन वाक्य दर्ज कर लिए थे :

किसी जर्मन के लिए क्षमा नहीं है !

किसी जर्मन के लिए रहम नहीं है !

किसी जर्मन को मारना एक बहुत बड़ा सवाब है !

और मालूम नहीं, रूसी फौज में इस तरह के कितने वासिली थे, जो प्रति-हिंसा की धधकती आग से हर वक्त दहका करते थे।

वासिली को अब अपनी जिन्दगी से एक तरह का मोह हो गया। बहादुर तो अब वह पहले से भी ज्यादा था, परन्तु पहले के समान मौत के मुंह में नहीं कूदता था। अब वह ज़िन्दा रहना चाहता था और महज़ और अधिक जर्मनों को मारने के लिए ज़िन्दा रहना चाहता था। यही वजह थी कि पोलैंड की एक घमासान लड़ाई में जब वासिली गोली खाकर ज़ख्मी हो गया, तब उसके दुःख का पारावार न रहा। क्योंकि ज़ख्मी होकर वह युद्ध में हिस्सा लेने के अयोग्य हो गया था। लड़ाई के मैदान में वासिली को बेहोशी की हालत में पाया गया था, और उसी हालत में वह अस्पताल में भर्ती कर दिया गया था।

वासिली को जब अस्पताल से छुट्टी मिली, तब तक जर्मन सेनाएं बहुत दूर चली गई थी और लड़ाई का फ्रंट जर्मनी के फ्रैंकफर्ट नगर तक जा पहुंचा था। रूसी फौजें फ्रैंकफर्ट को घेर लेने का प्रयत्न कर रही थीं और जर्मन अजीब

सकते की-सी हालत में थे। हिटलर का हुक्म था कि लड़ते-लड़ते जान देदो, मगर पीछे मत हटो। फ्रैंकफर्ट के फौजी अफसर यह जानते थे कि रूसियों की सुसज्जित, सुसंगठित, विशाल सेना का बढ़ता हुआ प्रवाह अब वे किसी भी दशा में नहीं रोक सकते। नगर की रक्षा करना असम्भव था और पीछे हटने की उन्हें इजाजत नहीं थी। रूसियों के सामने आत्मसमर्पण करने की बात भी वे नहीं सोच सकते थे, क्योंकि उन्हें हुक्म था कि यदि किसी जर्मन पर यह शक हो जाए कि वह रूसियों के सम्मुख आत्मसमर्पण करने जा रहा है, तो उसे गोली मार दो—चाहे वह कितना ही बड़ा अफसर क्यों न हो। सिर्फ मुमकिन था जान दे सकना या गिरफ्तार हो जाना, और जर्मन फौजी यही कर रहे थे।

सबसे बड़ी मुश्किल फ्रैंकफर्ट के नागरिकों की थी—खास तौर से बच्चों, बूढ़े मर्दों और बूढ़ी औरतों की। नगर छोड़कर भाग सकने के लिए उनके पास कोई सुविधा नहीं थी। नगर की एक-एक इमारत से किलेबन्दी का काम लिया जा रहा था। रूसी हवाई जहाज, रूसी टैंक और रूसी तोपें फ्रैंकफर्ट की इमारतों को तेजी के साथ जमींदोज करते जा रहे थे।

आज सुबह ही वासिली इस फ्रण्ट पर पहुंचा था और दिन भर उसने अपने मन की महीनों की हवस जी भर कर निकाली थी। उसकी आंखों के सामने हजारों जर्मन फौजी, और जर्मन नागरिक हताहत हो रहे थे। फ्रैंकफर्ट का बुरा हाल बना दिया गया था। पिछले एक युग से (लड़ाई के मैदान में ४४ महीनों का अरसा एक युग नहीं तो क्या है!) वासिली इसी दृश्य के सपने देखता आ रहा है। कब वह स्वयं किसी प्रमुख जर्मन शहर की वही हालत बना देने के काबिल होगा, जो हालत लड़ाई के शुरू से जर्मन फौजी रूसी नगरों की बनाते आए हैं। आज उसने सचमुच अनुभव किया कि फ्रैंकफर्ट का अग्निकांड उसके गांव लिखोस्लिडोवका के अग्निकांड से कहीं अधिक बड़ा है।

सांझ हो गई थी कि फ्रैंकफर्ट की जलती हुई इमारतों का निरीक्षण करने के लिए वासिली अकेला ही आगे बढ़ गया। आग की ये धधकती ज्वालाएं उसके सन्तप्त हृदय को जैसे चन्दन की शीतलता पहुंचा रही थीं। फ्रैंकफर्ट का यह टूटा-फूटा, जलता हुआ मुहल्ला पूरी तरह वीरान और सुनसान पड़ा था।

अचानक नजदीक ही से किसी अत्यन्त निरीह प्राणी के रोने की करुण आवाज वासिली को सुनाई दी। लपटों की ऊंची धू-धू ध्वनि की तुलना में यह आवाज बहुत ही क्षीण और दुर्बल थी। परन्तु इस आवाज में जो गहरी वेदना और अचूक व्याकुलता थी, वह उसे बरबस श्राव्य बना देती थी। वासिली का हृदय भी यह करुण आवाज सुनकर एक बार कांप गया। उसे कुछ समझ न आया कि यह किस जन्तु की आवाज है। पालतू बिल्ली, इन्सान का बच्चा, कोई निरीह परिन्दा—किसीकी भी यह आवाज हो सकती है।

वासिली ने ध्यान लगाकर सुना, तो नजदीक की जलती हुई इमारत के तहखाने से उसे वह आवाज आती प्रतीत हुई। क्षणभर तो उसने सोचा कि कहीं यह दुश्मन का फन्दा न हो, परन्तु अपनी ताकतवर स्टेनगन पर हाथ रखकर वह धीरे से उस तहखाने में उतर गया। आसपास के दहकते हुए मकानों का प्रकाश इस अंधेरे तहखाने को काफी प्रकाशित बनाए हुए था। इसी जगते-बुझते प्रकाश में वासिली ने इस तहखाने में सचमुच एक बहुत करुण दृश्य देखा। एक युवती जर्मन स्त्री मरी पड़ी थी। और उसकी नंगी छाती से लगकर ढाई-तीन साल की एक फूल-सी कोमल बालिका न जाने कब से चिल्ला रही थी। क्षणभर तक इधर-उधर देखते रहने के बाद अनायास ही वासिली ने उस बालिका को अपनी गोद में उठा लिया। बालिका रोते-रोते जैसे बिलकुल निराश हो गई थी। वासिली की गोद में पहुंचते ही असाधारण थकान के कारण उसका रोना तो बन्द हो गया, परन्तु घंटों तक रोने की प्रतिक्रिया के रूप में अब वह रह-रहकर और भी अधिक करुण सिसकियां भरने लगी।

तहखाने में खासा धुआं भरा हुआ था। वासिली उस लड़की को गोद में लेकर बाहर चला आया। बाहर आते ही वासिली को जैसे ध्यान हो आया कि अरे मैं तो फ्रैंकफर्ट में हूं। फ्रैंकफर्ट दुश्मन का पहला शहर है, जिसे हम लोग तबाह कर रहे हैं। अपनी जिन्दगी में मेरा यह पहला सौभाग्यशाली दिन है, जब मैं नाजी दानवों का यह किला उखाड़ फेंकने का पुण्यकार्य कर रहा हूं। और चिमगादड़ की तरह चीं-चीं करने वाली यह जरा-सी लड़की भी तो एक जर्मन लड़की है, जिसे मैं नाहक यहां उठा लाया हूं।

वासिली ने क्रोधभरी निगाह से उस बालिका की ओर देखना चाहा, मगर कोशिश करने पर भी वह उत्तेजित न हो सका। बालिका का सिसकना भी अब

तक बन्द हो चुका था। वासिली को अपनी ओर ताकता हुआ देखकर वह धीरे से बोली, 'पापा !' और इसके साथ ही साथ अत्यन्त निष्कलंक और मधुर भाव से वह मुस्करा दी।

वासिली ने पिछले ४८ महीनों में एक बार भी वैसी पवित्र मुस्कराहट नहीं देखी। उसे याद आया, आज से पौने चार साल पहले जब वह फौज में भर्ती हुआ था, मार्या की ठीक यही उम्र थी और ठीक इसी अन्दाज से वह मुस्कराया करती थी। मगर मार्या की याद के साथ ही साथ उसे अपनी बड़ी बेटी लिज़ा की याद भी हो आई। एक जर्मन नाजी पिशाच ने किस क्रूरता के साथ उस पवित्रतम लड़की की जान ले ली थी। और यह बालिका भी तो किसी जर्मन की ही लड़की है।

वासिली तिलमिला उठा। उसने चाहा कि अपने अन्तर की सम्पूर्ण प्रति-हिंसा और दानवीयता को जगाकर वह अपने को एक क्रूर और हिंसक पशु के रूप में परिवर्तित कर ले—एक ऐसा क्रूर पशु, जो इस नन्हीं-सी बालिका के यदि टुकड़े-टुकड़े न कर सके, तो कम से कम उन शैतान जर्मनों की तरह इसे जर्मन मकानों की धधकती ज्वाला में तो फेंक सके।

बालिका एक बार बहुत ही मधुर स्वर में फिर से बोली, 'पापा !' क्षण-भर रुककर तोतली ज़बान में उसने कहा, 'मुझे भूख लगी है, पापा !' वासिली अब तक थोड़ी-बहुत जर्मन समझने लगा था।

वासिली ने पाया कि वह कमजोरी का शिकार हो रहा है। अपना संपूर्ण पौरुष एकत्र कर उसने चाहा कि यदि वह और कुछ न भी कर सके, तो कम से कम उस बालिका को उसी जगह छोड़ तो दे ! जबरदस्ती अपनी मुद्रा को बहुत गम्भीर बनाकर वासिली ने बालिका को अपनी छाती से दूर करने की कोशिश की। परन्तु शायद बालिका गलती से वासिली को सचमुच अपना 'पापा' समझ बैठी थी। सम्भवतः उसका पिता भी कहीं जर्मन फौज में होगा और बहुत दिनों से उसने उसे नहीं देखा होगा। शायद उसके पिता की आयु और डीलडौल भी वासिली-से रहे होंगे। सहसा यह नन्हीं-सी बालिका वासिली की छाती से चिपक गई और बड़े प्यार भरे स्वर में बोली, 'पापा ! पापा !!'

वासिली ने फिर भी परवाह नहीं की। उस नन्हीं-सी बालिका को एक झटके के साथ उसने अपनी छाती से पृथक् कर दिया और उसे उस निर्जन,

सुनसान और दोनों ओर दहकती हुई सड़क पर अकेला छोड़कर वह तेजी से भाग खड़ा हुआ।

बालिका क्षण भर के लिए तो सहम गई, परन्तु उसके बाद उसकी रही-सही निरीह चेतना ने उसे सम्हाल लिया। 'पापा ! पापा !' चिल्लाती हुई वह भी जहां तक बन पड़ा, तेजी से वासिली के पीछे दौड़ी।

थोड़ी ही दूर पर एक मोड़ था। वासिली वहां पहुंचकर एक टूटी दीवार के पीछे छिप गया। वहां दीवार की ओट से उसने पीछे की ओर देखा। बालिका थोड़ी दूर तक तो दौड़ी और उसके बाद एकदम हताश होकर जलती सड़क के बीचोंबीच बैठ गई। इसी तरह अकर्मण्य-सी बैठी रहकर उस भयावनी रात के सन्नाटे में वह ज़रा-सी बच्ची अत्यन्त करुण स्वर में लगातार चिल्लाने लगी, 'पापा ! पापा !! पापा !!!'

वासिली आखिर परास्त हो गया। एक छोटी-सी निरीह बालिका ने गलती से उसे अपना पिता समझ लिया है। उसके न मां है, न बाप। न जाने कब से उसने न खाना खाया है, न पानी ही पिया है। दोनों ओर के मकान जल रहे हैं मगर यह सब कुछ भूलकर वह सिर्फ अपने इस कल्पित पापा को ही पुकारे जा रही है !

ओट से निकलकर वासिली तेजी के साथ वापस लौटा और उस छोटी-सी बालिका को उसने इतने आग्रह के साथ अपनी छाती से लगा लिया, जैसे वह सचमुच उसकी अपनी बेटी हो !

और युद्ध के बाद जब वासिली अपने घर वापस लौटा, तो चौदह साल की लिज़ा की जगह तीन साल की एक और लड़की को अपने साथ लेता आया। लोगों से वह अब भी यही कहता है कि मेरी लिज़ा रूप बदलकर वापस आ गई है !

याद

भारतवर्ष के जगत्प्रसिद्ध बूढ़े महाकवि विनायक जब से शिवपुर आए थे, उनके चेहरे पर एक विशेष प्रकार की गम्भीरता छाई हुई थी। इस समय नागरिकों के स्वागत-समारोह में एक ऊंचे आसन पर बैठे हुए उनकी वह गम्भीरता जैसे और भी गहरी हो गई है। लोगों को ज्ञात है कि महाकवि विनायक ने अपनी युवावस्था के अनेक वर्ष इसी शिवपुर में बिताए थे। परन्तु उसके बाद पिछले ४० वर्षों में शिवपुर-निवासियों के बीसियों निमन्त्रणों और सैकड़ों अनुनयों के रहते भी वे कभी इस नगर में क्यों नहीं आए, इस सम्बन्ध में कोई कुछ भी नहीं जानता। युवावस्था के उस बीते युग में, जब उन्होंने शिवपुर में आकर रहना शुरू किया था, उन्हें कोई नहीं जानता था। एक दिन अचानक ही वह शिवपुर छोड़कर चल दिए थे। उसके बाद जीवन के उत्तरार्द्ध में पहुंचकर जब उनकी ख्याति दिग्दिगन्त में व्याप्त हो गई, तब संसार के सभी देशों से उन्हें लगातार निमन्त्रण आने लगे। देश में, विदेश में वे और सभी जगह हो आए; मगर शिवपुर में आना उन्होंने स्वीकार नहीं किया। वही महाकवि विनायक ४० वर्ष और कुछ महीनों के बाद आज इस नगर में पधारे हैं।

जनता की हर्षध्वनि के समाप्त होते ही छः-सात साल की एक सुन्दर बालिका महाकवि विनायक के स्वागत में एक गीत गाने खड़ी हुई। मगर ओह, यह गीत तो स्वागत-गीत नहीं है! यह तो उन्हींका बनाया हुआ एक विषाद-गीत है। गीत का भाव इस प्रकार है—

'ओ निराश, ओ अभागे! तुम अपनी असफलता को ही अपनी शक्ति क्यों नहीं बना लेते?

'तुम्हारी भावुकता की बाढ़ में तुम्हारा मस्तिष्क और तुम्हारे शरीर की अन्य सभी शक्तियां बेबस होकर डूब गईं; परन्तु तुम्हारी चाह की यह प्रबल

याद तुम्हारे देवता को नमी तक नहीं पहुंचा पाई !

'तुम अभागे हो न ?

'निरन्तर याद की इस कठिन साधना की आंच में तुमने अपने शरीर को सुखा डाला है; परन्तु तुम्हारे अन्तःकरण की यह तीव्र ज्वाला तुम्हारे देवता के हृदय की साधारण सहानुभूति तक को भी नहीं पिघला पाई !

'तुम तिरस्कृत हो न ?

'तुम्हारे प्रेम के इस भूचाल को तुम्हारा देवता पागलपन समझता है, वेदना ने तुम्हारे मुह पर गम्भीर निराशा की जो छाया अंकित कर दी है, उसके कारण तुम्हारा हृदय-देव तुम्हें झक्की समझने लगा है।

'तुम उपेक्षित हो न ?

'तो फिर ओ चिर अभागे ! ओ चिर तिरस्कृत ! ओ चिर उपेक्षित ! विश्वभर में सर्वत्र व्याप्त इस गहरे विषाद के साथ एकाकार हो, तुम अपने को सभी जगह प्रकाशित की जा सकने वाली सच्ची सहानुभूति के रूप में परिवर्तित कर, अजेय क्यों नही बना लेते ?'

गीत शुरु हुआ और विश्वकवि विनायक ने उस नन्ही-सी बालिका के चेहरे की ओर जरा ध्यान से देखा। गीत का भाव, बालिका का अछूता स्वर और उसका सुन्दरतम निष्कलंक चेहरा—इन सभी चीज़ों में कोई विशेषता थी। बहुत ही असाधारण। गीत शुरू हुआ और कवि भूतकाल कु केछ धुधले चित्रों को बड़ी स्पष्टता के साथ, मानो अपनी आंखों के सम्मुख देखने लगे।

विनायक २८ वर्ष का एक युवक है। एक सन्तानहीन विधुर कवि। बिल्कुल अकेला और बिल्कुल मामूली। प्रत्येक दृष्टि से मामूली। अपनी समझ में वह प्रतिभाशाली है, कलाकार है; परन्तु दुनिया की निगाहों में वह कुछ भी नहीं है। दुनिया तो उसे जानती ही नहीं। वह कवि है, और प्रायः अपने ही में मस्त रहता है। लोग उसके सम्बन्ध में क्या कहते हैं, इसकी उसे परवाह नहीं।

यही शिवपुर। आज से ४२ वर्ष पहले का शिवपुर। विधाता ने विनायक को विधुर बना दिया है। दो वर्ष हुए, वह अपना 'हनीमून' भी ठीक तौर से नहीं मना पाया था कि महाकाल ने उसे फिर से अकेला कर दिया। परिस्थितियां

बदल डालने के खयाल से वह शिवपुर आकर रहने लगा था। इन दिनों विनायक के जो थोड़े-से दोस्त हैं, वे उसे सलाह देते हैं कि वह फिर से विवाह कर ले, परन्तु विनायक कवि है, भावुक है, उसे इन बातों के सोचने से भी चोट पहुंचती है। विनायक फिर कभी विवाह नहीं करेगा, ऐसा भी उसने कभी नहीं सोचा। परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ सोच सकने की जैसे उसमें शक्ति ही नहीं रही। जो कुछ है, ठीक है। जिस तरह है, उसी तरह चलने दो। जिन्दगी है, कट ही जाएगी। रुकेगी नहीं।

गान के पहले ही चरण पर जनता करतल-ध्वनि कर उठी। बूढ़े कवि के जागृत स्वप्न में जैसे क्षणभर की बाधा पड़ गई। एक बार पुनः उसने उस छोटी-सी बालिका की ओर देखा, जो लगभग बिना समझे-बूझे कवि के हृदय से निकले उन भावों को बहुत ही मधुर स्वर में केवल गाए जा रही थी। सहसा बालिका की आंखों की ओर देखकर कवि का सम्पूर्ण शरीर सिहर उठा। ओह, यह तो सुलोचना की-सी आंखें हैं! ठीक वैसी ही उज्ज्वल और बिल्कुल उसी ढंग की।

आज से बयालीस बरस पहले विनायक ने जिस सुलोचना को देखा था, उसकी आंखें इस बालिका की अपेक्षा अवश्य ही अधिक परिपक्व थीं; परन्तु यह कितनी असामान्य समानता है! कवि के सम्पूर्ण जीवन का सबसे अधिक गहरा, सबसे अधिक सिहरन उत्पन्न करने वाला और सबसे अधिक विषादपूर्ण अध्याय हाल ही में देखे गए स्वप्न के समान उसके मानस-पटल पर छा गया।

सुलोचना विनायक के एक घनिष्ठ मित्र की बहन थी। संकोची स्वभाव विनायक ने सुलोचना से स्वयं परिचय प्राप्त नहीं किया था। किसी मासिक पत्र में विनायक की कोई कविता पढ़कर सुलोचना ने स्वयं ही अपने भाई के इस मित्र से जान-पहचान बढ़ाई थी। वह उसकी कविताओं को पसन्द करती थी। अपने कालेज की सहेलियों से भी वह अक्सर एकाकी रहनेवाले इस विधुर कवि विनायक का जिक्र किया करती थी। उसके हृदय में विनायक के प्रति जैसे दया का-सा भाव उत्पन्न हो गया था। प्रतिभाशालिनी, जिद्दी स्वभाव और साफ-साफ सुना देने वाली सुलोचना की असाधारण सुन्दरता का मुख्य कारण उसकी आंखें ही थीं। हू-ब-हू इसी बालिका की आंखों का विकसित रूप।

वृद्ध कवि के हृदय में सुलोचना की याद बचपन में सुने किसी मधुर संगीत की सुखद स्मृति के समान झनझना उठी और अगले ही क्षण मानो चोट खाकर उन झनझनाहट का वाद्य यन्त्र ही टूट गया। सुलोचना विनायक का सम्मान करती है, उसे आदर की दृष्टि से देखती है और उसके हृदय में उसके प्रति दया का भाव भी है, परन्तु यह सब होते हुए भी वह उसे प्यार नहीं करती।

असमय ही में अपनी जीवन-संगिनी को खोकर, संसार को निराशा की दृष्टि से देखने वाले कवि-हृदय विनायक ने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि उसके जीवन में फिर से कोई ऐसा अवसर आएगा, जब कोई उसे प्यार करेगा। मगर अचानक उसके भावुक हृदय ने यह अनुभव किया कि सुलोचना उसे आदर की दृष्टि से देखती है, उसका सम्मान करती है और उसकी छोटी-छोटी हरकतों में भी दिलचस्पी लेती है। अठाइस बरस के होते हुए भी नासमझ और भोले विनायक ने अपना परिपक्व और गम्भीर हृदय कालेज के द्वितीय वर्ष में पढ़ने वाली सुलोचना के अर्पण कर दिया। सुलोचना के आदर में उसने प्यार की झलक नहीं देखी थी, फिर भी सुलोचना जैसी किशोरी की ओर से मिली जरा-सी आदरपूर्ण सहानुभूति के बदले में जैसे उसने अपना सम्पूर्ण हृदय, अपना सभी कुछ स्वेच्छापूर्वक उसके अर्पण कर दिया।

बहुत दिनों तक तो सुलोचना इस बात को समझ ही नहीं पाई और जब कवि-हृदय विनायक ने किसी अत्यन्त कविताशून्य ढंग से अपने हृदय के भाव सुलोचना पर प्रकट कर दिए, तब उसने देखा कि सुलोचना उसके हृदय की इस अभिलाषा को पूरे तौर से अनधिकार चेष्टा समझती है।

छः-सात बरस की वह नन्ही-सी बालिका इस समय जैसे सम्पूर्ण सभा के लोगों की अन्तर्हित मनोव्यथा का पता पा गई थी और अपनी कोमलतम स्वर-लहरी से, सैकड़ों-हजारों हृदयों में छिपे हुए गम्भीर विषाद को उघाड़-उघाड़कर कह रही थी, 'तुम अभागे हो न ?'

वृद्ध कवि ने पूरी गहराई के साथ अनुभव किया—ओह, वह तो सचमुच अभागा है !

अभी गीत का दूसरा चरण ही शुरू हुआ था।

◇ ◇ ◇

उसके बाद करीब अठारह महीनों तक विनायक शिवपुर में ही बना रहा। आज के महाकवि और विश्व भर में पूजा पाने वाले विनायक के ७० बरस के जीवन में उन अठारह महीनों से बढ़कर निराशापूर्ण और साथ ही साथ आशापूर्ण समय और कोई नहीं बीता।

विनायक को जब यह ज्ञात हुआ कि सुलोचना का उसके प्रति भाव ही बदल गया है और वह उसे रोषपूर्ण भय के साथ देखने लगी है, तब उसके चित्त को गहरी चोट लगी। कई सप्ताहों तक वह सुलोचना के घर नहीं गया। बहुत तरह से उसने प्रयत्न किया कि वह अपने जी को समझा ले कि सुलोचना के प्रति प्रेमभाव उत्पन्न करना उसकी अनधिकार चेष्टा है। वह तो एक अभागा विधुर है। वह किसीसे यह आशा क्यों करे कि कोई उसे निकटतम आदर की, अपनेपन की, प्यार की दृष्टि से देखे? अपने हार्दिक प्रेम के बदले में किसीसे उसी तरह के भावों के प्रतिदान की चाह रखने का भी उसे क्या अधिकार है? दुनिया भर के प्राणी एक दूसरे के साथ—कोई किसीके साथ और कोई किसी सम्बन्ध से—बंधे हुए हैं, संयुक्त है। दुनिया भर प्रेम का प्रतिदान चाहती है तो चाहा करे; मगर विनायक तो अकेला है। विधाता ने उसे अकेला बना दिया। भला वह क्यों अपने इस अकेलेपन से नजात पाने की अनधिकार इच्छा करे?

मगर जी नहीं माना। पूरे मनोयोग के साथ उसने एक कविता लिखी। शिवपुर में कोई बड़ा कवि-सम्मेलन था। विनायक भी निमन्त्रित था। उसने अपनी कविता वहां सुनाई। एक करुण गीत था। ऐसा गीत, जो पत्थर को भी रुला दे। विनायक को अपनी कविता सुनाने में पन्द्रह मिनट से अधिक न लगे होंगे। जब वह अपनी कविता समाप्त कर चुका, तो जैसे सारी सभा ने देख लिया कि विनायक न केवल शिवपुर का, अपितु अपने प्रान्त का सर्वश्रेष्ठ कवि है। उसकी कविता ने सारी सभा को विचलित कर दिया था।

कवि-सम्मेलन जब समाप्त हुआ, तब आसमान में तारे निकल आए थे। अपने प्रशंसकों से जिस किसी तरह छुटकारा पाकर विनायक सुलोचना के घर की ओर चल पड़ा; उड़ती हुई-सी चाल में। उस समय उसका दिमाग आशा की उत्साहदायिनी महक से भरा हुआ था। उसे ज्ञात था कि कवि-सम्मेलन में

सुलोचना भी उपस्थित थी। यह कवि-सम्मेलन विनायक के लिए किसी विजय-यात्रा से कम सिद्ध न हुआ था। इससे वह भली भांति यह कल्पना कर सकता था कि सुलोचना पर उसकी इस असाधारण सफलता का कैसा प्रभाव पड़ा होगा।

उमंगों में भरा हुआ विनायक जब सुलोचना की कोठी के फाटक तक पहुंचा, तो उसे दिखाई दिया कि सामने के बरामदे में, बिजली की बत्ती के नीचे सुलोचना धीरे-धीरे अकेली टहल रही है। विनायक स्वभाव से बहुत आशापूर्ण तो न था; परन्तु आज की सफलता ने उसकी आशाओं का माप एकाएक बहुत ऊंचा कर दिया था। क्षण भर के लिए विनायक को ऐसा जान पड़ा, मानो सुलोचना उसीकी कविता के बारे में सोच रही है। मगर नहीं, इस दिशा में विनायक ने अपनी कल्पना को बहुत आगे नहीं बढ़ने दिया।

धीरे-धीरे वह सुलोचना के निकट पहुंच गया। वह अन्धकार में था, इससे सुलोचना की निगाह उसपर नहीं पड़ी। साहसपूर्वक सीढ़ियों पर चढकर विनायक बरामदे में जा खड़ा हुआ और तब सहसा सुलोचना की निगाह उस-पर पड़ी। सुलोचना इस समय किसी व्यक्तिगत चिन्ता में मग्न है, यह देखे बिना ही भोले-भाले विनायक ने मुस्कराकर उसे नमस्कार किया। जवाब में सुलोचना ने अपने दोनों हाथ तो जोड़ दिए, परन्तु उसके चेहरे पर कोमलता की एक रेखा तक भी दिखाई नहीं दी। विनायक का मुह किसी मरीज़ के समान तेज-हीन और पीला पड़ गया। इसी समय सुलोचना ने अविचलित भाव से पूछा—'कहिए, क्या काम है ?'

बेचारे विनायक को एक ही काम सूझा, 'भाई साहब कहां हैं ?'

'वह बाहर गए है, और शायद जल्दी नहीं लौटेंगे।' कहकर सुलोचना पीछे की ओर घूम गई।

चोट खाकर जैसे युवक कवि का अनुभूतिपूर्ण हृदय पुकार कर उठा। उसने धीरे से कहा, 'आप मेरे प्रति इस तरह अनावश्यक रूप से कठोर क्यों हो गई हैं ?'

'मैं किसीके प्रति कठोर-वठोर कुछ नहीं !' कहकर सुलोचना तेज़ी से अंदर चली गई।

कहां गया वह कवि-सम्मेलन ? कहां गई आज की वह विजय-यात्रा ? और कहां गया उसका तेज़ नशा ? जैसे किसी ने विवाह के दिन थप्पड़ मार दिया

हो ! विनायक का रोम-रोम अपने को अपमानित अनुभव करने लगा । चुपके से वह बरामदे से नीचे उतरा और अंधकार में पहुंचते ही सिसककर रो उठा। संपूर्ण शिवपुर को अनायास ही विमोहित कर लेने के सिर्फ आध घंटा बाद ही वह अभागा युवक कवि इस तरह अपमानित होकर अंधकार में चुपचाप आंसू बहाता हुआ अपने घर की ओर लौट रहा था ।

बूढ़े महाकवि की अर्द्ध चेतना को जान पड़ा, जैसे कोई बहुत दूर पर अत्यन्त कोमल और संगीतमय स्वर में याद दिला रहा है—'तुम तिरस्कृत हो न ?'

हां, उस दिन के अभागे विनायक से बढ़कर तिरस्कृत और कौन होगा ?

परन्तु सुलोचना भी पत्थर की नहीं बनी है। वह एक अनुभूतिशील नारी है। उसके भी हृदय है। क्या अच्छा है और क्या बुरा है, इसे वह पहचानती है। वह इस प्रतिभाशाली कवि के प्रति अविनीत हुई थी, इसका उसे खेद है। सुलोचना का भाई विनायक को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता है, और जब कभी संभव होता है, उसे अपने घर तक चलने के लिए बाधित करता है । अपने कमरे के भीतर से सुलोचना ने अनेक बार देखा है कि निराशा की मूर्तिमान अवतार-सा एक युवक बड़ी झिझक के साथ उसकी कोठी के द्वार तक पहुंचता है और उसके बाद कोई न कोई बहाना कर सदा बाहर ही से वापस लौट जाता है।

इसी बीच एक ऐसी घटना हुई, जिससे सुलोचना को विनायक की श्रेष्ठता जी से स्वीकार करनी पड़ी। सुलोचना एफ० ए० पास कर चुकी थी। इसके बाद भी वह पढ़ाई जारी रखे, यह उसकी मां को स्वीकार न था। उसकी एक ही तो कन्या है। मां और भाई साहब ही सुलोचना के अभिभावक थे। उसके पिता अब इस दुनिया में नहीं थे। उसके अन्य रिश्तेदारों का भी यही ख्याल था कि सुलोचना का विवाह हो जाना चाहिए। भाई साहब मां का आग्रह न टाल सके। सुलोचना के एक निकट सम्बन्धी ने एक बहुत ही अच्छा समझा जाने वाला प्रस्ताव भी उसकी मां के सम्मुख पेश कर दिया। अकेली सुलोचना को छोड़कर घर भर में और कोई व्यक्ति ऐसा न था, जो उसके कौमार्य और पढ़ाई को अभी और जारी रखने के पक्ष में हो।

इस अवसर पर विनायक ही सुलोचना के काम आया। सुलोचना ने कभी उससे अपने जी की बात नहीं कही, परन्तु जैसे विनायक का अन्तःकरण स्वय इस बात को जानता था कि इस सम्बन्ध में सुलोचना की क्या राय हो सकती है। उसने सुलोचना के भाई को समझाया और उसे अपने साथ सहमत कर उसकी वृद्धा माता को भी यह भली प्रकार समझा दिया कि आजकल के ज़माने में लड़कियों का जी दुखाने का परिणाम बहुत भयंकर भी हो सकता है और यह भी कि अच्छी लड़कियों के लिए अच्छे लड़कों की कमी कभी नहीं रहती।

सुलोचना को जब यह बात मालूम हुई, तो उसका अन्तःकरण विनायक के प्रति कृतज्ञता से भर उठा। वह अब विनायक को सम्मान की दृष्टि से देखती है; जब कभी संभव होता है, उसे अपने घर पर निमन्त्रित भी करती है। और कभी-कभी उसका यह अपनापन इतना बढ़ जाता है कि वह उसपर शासन भी करने लगती है।

विनायक अब सुखी है और क्या उसका अन्तःकरण अब यह अनुभव नहीं करता कि उस अभागे के लिए इतना ही काफी है? परन्तु विधाता ने मनुष्य को हृदय नाम की जो चीज दी है, वह मानो सन्तोष करना जानती ही नहीं। उसकी चाह कभी पूरी नहीं होती। विनायक समझदार है और वह अपने भावों पर संयम रखता है। परन्तु उसके अन्तःकरण में—'और! और!! अभी और!!!' की जो पुकार प्रतिक्षण मची रहती है, उसका दमन वह किस तरह करे?

महीनों तक विनायक आशा और निराशा के इन हिंडोलों पर झूलता रहा। वह समझदार था। उसके जी को इस बात का भ्रम तो एक बार भी नहीं हुआ कि सुलोचना उसे प्यार करने लगी है। परन्तु यह अनुभूति उसे अनेक बार होती कि यदि वह अपने हृदय की गहरी व्यथा ठीक ढंग से सुलोचना के समुख व्यक्त कर सके, यदि वह किसी तरह अपना जी खोलकर सुलोचना को यह दिखा सके कि उसका भावुक हृदय किस गहराई और कितनी तल्लीनता के साथ सुलोचना का उपासक बना हुआ है, तो वह अवश्य ही उसपर अनुकम्पा करेगी; और नहीं तो विनायक जैसे प्रतिभाशाली युवक के सर्वस्व-समर्पण का यह आवेदन सुलोचना से यों ही ठुकराया न जाएगा।

इन दो व्यक्तियों के इति-ह-आस (ऐसा हुआ था) ने अपने को दोहराया।

सुलोचना को जब यह ज्ञात हुआ कि विनायक अभी तक उसे पहले के समान चाहता है; उसकी स्पष्ट अस्वीकृति के रहते भी वह अपनी चाह का रूप तक भी नहीं बदल सका, तो उसके हृदय में विनायक के प्रति गहरे रोष की भावना फिर से उत्पन्न हो गई। सुलोचना पुनः विनायक से बच-बचकर रहने लगी।

सुलोचना के भाई ने विनायक को रात्रि-भोजन के लिए बुलाया था। बड़ी उमगों के साथ विनायक सुलोचना के निवासस्थान पर गया था। बिजली के उज्ज्वल प्रकाश में दूर ही से विनायक ने देखा कि ड्राइंग रूम में सुलोचना हस-हसकर अपने भाई से बातें कर रही है। दरवाजा खुला हुआ था अतः भीतर पहुंचते ही विनायक ने मुस्कराकर सुलोचना को नमस्कार किया। सुलोचना एकाएक गम्भीर हो गई। न केवल उसने विनायक के किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, अपितु अपने भाई से भी वह नाराज हो गई। घर भर का वातावरण गम्भीर हो गया। यहां तक कि भाई साहब के अनुरोध और आग्रह की भी नितान्त उपेक्षा कर सुलोचना रात्रि-भोजन में सम्मिलित नहीं हुई। कुछ ही देर बाद वह ड्राइंग रूम से उठी और अपने शयनागार में चली गई। विनायक के अनुभूतिशील हृदय ने यह सब देखा और समझा।

आज से ४० बरस और ६ महीना पहले की एक रात बूढ़े महाकवि की कल्पनामयी आंखों के सामने मानो प्रत्यक्ष होकर आ खड़ी हुई।

ठण्डी अंधेरी रात है। आसमान में बादल नहीं हैं, मगर फिर भी तारे दिखाई नहीं देते। पृथ्वी घने कोहरे से ढंकी है। सब तरफ सन्नाटा है। कहीं किसी तरह का शब्द नहीं है। रात का एक बजा होगा। बेहोशी की-सी दशा में विनायक अपने बिस्तरे पर लेटा हुआ है। सहसा वह उठ बैठा। रजाई के अंदर सिकुड़ा हुआ वह अन्धकार ही में उकडूं होकर बैठ गया। उसे यह भी मालूम नहीं कि रात्रि-भोजन के बाद सुलोचना के घर से यहां तक वह पहुंचा किस तरह। उसके अनुभूतिशील हृदय में कोई गहरी वेदना, कोई गहरी जलन, कोई गहरी टीस उठ खड़ी हुई है, जिसने उसकी सभी वृत्तियों को लगभग बेहोश-सा बना डाला है। इस दशा में संसार की कोई सहानुभूति उसे किसी तरह की कुछ भी सान्त्वना नहीं पहुंचा सकती। अगर वह जरा-सी शराब पी सकता! मगर नहीं उसने शराब कभी नहीं पी। उसे शराब का ख्याल भी नहीं आया।

यह जी का दर्द है। यह एक भावुक अन्तःकरण की जलन है। यह एक कवि-हृदय की टीस है। इसका इलाज विश्व भर में किसीके पास नहीं है।

न जाने कितनी देर तक विनायक उसी तरह बैठा रहा। ठीक उसी तरह। एक ही आसन से। संज्ञाहीन-सा। पत्थर के बुत-सा।

आखिरकार रजाई के उस ढेर में गति दिखाई दी। विनायक ने हाथ बढ़ाकर स्विच दबा दिया। कमरा आलोकित हो उठा। सिरहाने की ओर एक बडी टेबिल पर कुछ कागज रखे थे, एक फाउण्टेनपेन भी था। विनायक ने उन्हे उठा लिया और वह कुछ लिखने लगा। लिखना समाप्त करते न करते जैसे उसकी घनीभूत मनोव्यथा पिघल पड़ी। वह चुपचाप आंसू टपकाने लगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल साहस करके विनायक सुलोचना के घर गया। उसका चेहरा बरसों के मरीज़ के समान निस्तेज हो रहा था। सारी रात जागे रहने के कारण उसकी आखें लाल-लाल होकर मानो दहक-सी रही थीं। विनायक ने देखा, आंगन में सब ओर सन्नाटा है। वह सीधा सुलोचना के कमरे की ओर गया। कमरे का दरवाज़ा भीतर से बन्द था। विनायक ने दरवाज़ा खटखटाया। भीतर से सुलोचना की रोबीली-सी आवाज़ आई—'कौन है?'

'मै हूं विनायक।'

'भाई साहब यहां नही है!'

विनायक ने साहस करके कहा, 'मुझे आप ही से काम है।'

'ठहरिए, दरवाज़ा खोलती हूं।'

पूरे दो मिनट तक दरवाज़ा नहीं खुला। इस गहरे अपमान को भी युवक विनायक शान्त भाव से खड़े रहकर सहता गया, जैसे मान-अपमान के बन्धनो से वह बहुत ऊपर उठ गया हो। अन्त में दरवाज़ा खुला और विनायक को अन्दर आने के लिए कहे बिना ही दरवाज़े पर खड़ी रहकर सुलोचना ने पूछा, 'कहिए?'

विनायक ने कांपते हुए हाथों से एक नीला लिफाफा बाहर निकाला।

सुलोचना ने पूछा, 'यह किसकी चिट्ठी है?'

'आपकी।'

सुलोचना को ऐसा अनुभव हुआ, मानो वह सभी कुछ समझ गई। उसने
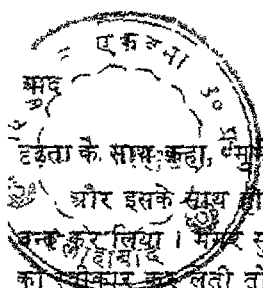
दृढ़ता के साथ कहा, 'मुझे इस तरह की चिट्ठियां पढ़ना पसन्द नहीं है !'

और इसके साथ ही साथ अत्यधिक निर्दय भाव से उसने उसी क्षण दरवाज़ा बन्द कर लिया । मगर सुलोचना खाक भी न समझी थी । यदि वह उस लिफाफे को स्वीकार कर लेती तो वह देखती कि उसमें एक मटियाले कागज़ पर केवल वही गीत अंकित था, जिसे इस समय यह नन्ही-सी बालिका अत्यधिक मधुर स्वर से इस महासभा में गाकर सुना रही है !

इसी समय सम्पूर्ण सभा-भवन तालियों की तड़तड़ाहट से गूंज उठा। बालिका का गीत समाप्त हो चुका था और वह फूलों की एक बहुमूल्य सुन्दर माला लिए इस जगद्वन्द्य बूढ़े महाकवि की ओर बढ़ी आ रही थी । महाकवि की बूढ़ी, परन्तु स्वच्छ आंखों में जो दो बूंद आंसू भर आए थे, वे लुढ़ककर उनकी अत्यधिक भव्य और चांदी-सी श्वेत दाढ़ी में जा अटके। बालिका निकट आ गई थी । महाकवि ने अपना सिर उसके सम्मुख झुका दिया । बालिका ने अपने दोनों हाथ उठाकर वह माला उनके गले में पहना दी । सम्पूर्ण सभा-भवन एक बार पुनः ऊंची करतल-ध्वनि से गूंज उठा ।

बूढे कवि ने अपना आशीर्वाद भरा शुभ्र हाथ बालिका के सिर पर रखकर उससे पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है बेटी ?'

बालिका ने उत्तर दिया, 'विजयकुमारी ।'

महाकवि ने पूछा, 'तुम किसकी कन्या हो ?'

बालिका ने मानो बड़े उत्साह के साथ जवाब दिया, 'श्रीमती सुलोचना देवी की ।'

सभा के मन्त्री महोदय ने बताया, 'यह कन्या शिवपुर की सम्मानित नागरिका श्रीमती सुलोचना देवी की पौत्री है ।'

वास्तव में बालिका की दादी उसे इतना अधिक प्यार करती थी कि वह अपनी दादी को छोड़कर दुनिया भर में और किसीको जानती ही न थी ।

महाकवि ने सहसा बालिका को खींचकर अपनी छाती से लगा लिया और पूरे चालीस साल के बाद उनकी बूढ़ी आंखें विजय की एक उज्ज्वलतम ज्योति से चमक उठीं !

इसी समय बालिका मंच से नीचे उतरी और एक बूढ़ी सम्भ्रान्त महिला के पास जा पहुंची। यह देखकर बालिका के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि उसकी बूढ़ी दादी की आंखों में भी आंसू भरे हुए हैं और वह अपनी पोती को अपने प्रगाढ़ आलिंगन से पृथक् ही नहीं करना चाहती।

बालिका को माध्यम बनाकर क्षणभर के अन्तर से एक वृद्ध और एक वृद्धा के दो पवित्रतम आलिंगन !

राधा

जीवन में कभी-कभी ऐसा समय भी आता है, जब मनुष्य का अन्तःकरण अपने प्रियतम से प्रियतम व्यक्ति के लिए भी घृणा, खीझ और रोष से भर उठता है। भद्रगोप की आज ऐसी ही दशा थी। राधा उसकी पत्नी है। अपने विवाहित जीवन के आठ बरस उसने इतने सुखपूर्वक बिताए हैं कि वृन्दावन भर में उसका गृहस्थ जीवन चर्चा और ईर्ष्या का विषय बना रहा है। राधा का बाह्य रूप जितना सुन्दर है, उसका अन्तरंग उससे भी बढ़कर स्वच्छ, मनोमोहक और आकर्षक है। राधा जैसी पत्नी को पाकर भद्रगोप के लिए इस जीवन में और कुछ भी पाना शेष नहीं रहा; कम से कम अभी कुछ समय पहले तक उसकी यही धारणा थी।

परन्तु पिछले कुछ दिनों से परिस्थिति एकाएक विकट हो उठी है। पिछले अनेक सप्ताहों से भद्रगोप अपने प्रति राधा के बर्ताव में अधिकाधिक और भारी अन्तर पा रहा है। वसन्त ऋतु के आगमन के साथ-साथ राधा का जी घर से और भी अधिक उचाट रहने लगा है। वह अब सारा-सारा दिन घर से गुम रहती है और जमुना पार के झाड़-झंखाड़ों में घूमा करती है। क्षीण-कलेवरा जमुना की स्वच्छ-सी जलधार के निकट कुछ दूरी तक रेत फैली हुई है। उसके बाद मामुली ऊंचाई के कगारे पर ढाक और कदम के पेड़ों का हरा-भरा जंगल छाया हुआ है। वसन्त के आगमन के साथ-साथ ढाक के पेड़ बहुतायत से फूल आए है, जैसे जमुना पार का सम्पूर्ण जंगल आग की लाल-लाल लपटों से घिरा हुआ हो। इस जंगल में मोरों की बहुतायत तो सदा ही रहती है, इन दिनों उसकी फूली हुई डालियों पर कोयल कुहकने लगी है। इसी जंगल में इस वर्ष एक नया चमत्कार-सा दिखाई देने लगा है। एक बेफिक्रा-सा नौजवान न जाने कहां से आकर इसी जंगल में डेरा डाले पड़ा है। हर समय मुस्कराते

रहना और मुग्धकारी स्वर में बांसुरी बजाते जाना उसका काम है। बंशी की वह तान कभी जंगल के एक भाग से सुनाई देती है और कुछ ही क्षणों के बाद मानो उसकी गूंज और भी अधिक मधुर होकर चुपचाप लेटी हुई मथुरा नगरी के स्वच्छ वातावरण में मानो सुगन्ध की लपटों के समान छा जाती है, और इतने दिनों से भद्रगोप देख रहा है कि जब जमुना पार से बंशी की वह मधुर ध्वनि सुनाई देती है, तब राधा अपने पर संयम नहीं रख सकती। उसका दिल बेकाबू हो जाता है, और वह घर का काम-काज छोड़कर, जैसे बरबस-सी घर से चल देती है। जमुना-पार के जंगलों में जाकर न जाने वह क्या करती रहती है। भद्रगोप तो केवल इतना ही जानता है कि तब सारा दिन उसे राधा के दर्शन नहीं होते।

इतने दिनों तक तो भद्रगोप सहन करता रहा; परन्तु आखिर सहनशीलता की भी कोई हद होती है। आज उसने निश्चय कर लिया है कि वह आज राधा से जवाब-तलब करेगा। वह आज उससे स्पष्ट शब्दों में पूछेगा कि आठ बरसों तक सद्गृहस्थ का जीवन बिता लेने के बाद, जीवन के मध्याह्न के निकट पहुंचकर, राधा अपनी सम्पूर्ण शरम-हया भूल किस तरह गई ? सुबह से लेकर रात तक एक परपुरुष के पीछे-पीछे घूमते रहने का आखिर मतलब क्या है ? हां, वह परपुरुष ही तो है, और क्या ? आने तो दो राधा को। आज सारा मामला, सारा हिसाब-किताब, साफ कर लिया जाएगा।

सूरज डूब गया। शुक्लपक्ष की नवमी का तिरछा चांद आकाश में प्रकाशित हो गया और उसके सभी ओर तारे टिमटिमाने लगे; परन्तु राधा अभी तक नहीं लौटी। भद्रगोप अपने मकान के खुले सहन में खड़ा होकर राधा की प्रतीक्षा कर रहा था। दिन भर की तेज गरमी के बाद, इस समय सहसा यमुना नदी की सतह पर से ठण्डक लेकर हवा का एक झोंका चला और सम्पूर्ण वृन्दावन को शीतलता की झलक-सी देते हुए आगे बढ़ गया। ठण्डी हवा के इस झोंके के साथ-साथ मधुरतम बंशी-ध्वनि की एक क्षीण तान भद्रगोप के कानों में पड़ी। भद्रगोप का चित्त सहसा उद्विग्न हो उठा। वह समझ गया कि निठल्लों और निर्लज्जों की वह टोली यमुना-तट से धीरे-धीरे वृन्दावन की ओर बढ़ी आ रही है।

भद्रगोप तैयार होकर खड़ा हो गया।

काफी देर के बाद राधा वहां पहुंची। राधा को सम्मुख पाकर भद्रगोप का सम्पूर्ण आवेश जैसे शान्त हो गया। मगर इस तरह भी तो काम नहीं चलेगा। अपना सम्पूर्ण साहस बटोरकर जलती हुई-सी आवाज में भद्रगोप ने पूछा, 'इतनी देर तक कहां रहीं तुम ?'

अपने उज्ज्वल मुंह पर भोली-भाली मुस्कराहट लाकर राधा ने कहा, 'यह क्या तुम जानते नहीं हो प्यारे !'

भद्रगोप ने अपने को शिथिल नहीं पड़ने दिया। वह बोला, 'मैं जो कुछ जानता हूं, वह बात तुम्हारी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली नहीं है।'

राधा चुप रही।

भद्रगोप को जैसे सचमुच क्रोध आ गया। उसने कहा, 'न जाने किस आवारागर्द के पीछे दिन-रात मारे-मारे फिरने में तुम्हें लाज नहीं आती ?'

राधा आश्चर्य से अपने पति की ओर देखने लगी।

गुस्सा बढ़ गया। भद्रगोप ने कहा, 'देखो राधा, आज तुम्हें इस बात का जवाब देना ही होगा। मैं और अधिक सहन नहीं कर सकता।'

परन्तु राधा ने कोई जवाब नहीं दिया। दो-एक क्षणों की प्रतीक्षा के बाद भद्रगोप ने कहा, 'अब जवाब क्यों नहीं देतीं ?'

राधा बिलकुल शान्त और अनुद्विग्न भाव से बोली, 'नहीं, अभी तुम्हारे ही कहने की बारी है। हृदय की सारी कुढ़न इसी समय निकाल लो नाथ !'

भद्रगोप अब कुछ ढीला पड़ा। आज जो बड़ी-बड़ी बातें कहने का उसने निश्चय किया था वे सब इस समय उसे भूल गईं। फिर भी अपने को पराजय के मुंह से बचाने के लिए उसने कहा, 'आखिर वह है कौन ?'

राधा का मुख सहसा उज्ज्वल हो उठा। उसने मुस्कराकर कहा, 'वह दिन दूर नहीं है, जब सारा विश्व उन्हें पहचान लेगा।'

और तब उसने अपने कपड़ों के भीतर से बांस की एक छोटी-सी बांसुरी निकाली और धीरे-धीरे अत्यन्त मधुर स्वर में वह उसे बजाने लगी।

भद्रगोप अब भी उसी तरह निकट ही खड़ा था। राधा का उस ओर ध्यान नहीं था। यदि वह उधर देख पाती, तो उसे पता चलता कि हृष्ट-पुष्ट और सभी दृष्टियों से पूर्ण पुरुष भद्रगोप की आंखों में एकाएक आंसू भर आए हैं।

राधा बिल्कुल अनासक्त भाव से अब भी अपनी बांसुरी बजाए जा रही थी।

मगर रात जब आधी से भी ऊपर बीत गई, तब राधा की वह अनासक्ति कायम नहीं रह सकी। वह अपने कमरे में अकेली लेटी हुई है। पिछले पन्द्रह-बीस दिनों से राधा और भद्रगोप पृथक्-पृथक् कमरों में सोते हैं; और इतने दिनों तक कभी राधा ने इस बात की चिन्ता नहीं की थी, जैसे इस ओर उसका ध्यान ही न गया हो।

परन्तु आज? आज राधा का जी हठात् उद्विग्न हो उठा। सांझ के समय भद्रगोप की जिस मुद्रा को उसने समसरवस्थ के साथ देखा था, इस समय उसके पति का वही अत्यन्त विषण्ण, उदास और कुपित चेहरा, मानो शतगुना अधिक स्पष्ट होकर, उसके मानसिक नेत्रों के सम्मुख आ उपस्थित हुआ।

सुनसान काली अंधेरी रात है। साथ के कमरे में भद्रगोप सोया हुआ है। कौन जाने वह सिर्फ लेटा हुआ है, ऊंघ रहा है या सोया हुआ है। भद्रगोप की चाहे जो भी दशा हो, राधा की आंखों में नींद नहीं है। उसके हृदय की बेचैनी क्रमशः बढ़ती चली जा रही है। धीरे-धीरे राधा को ऐसा जान पड़ा, जैसे भद्रगोप के चेहरे का सम्पूर्ण कोप तो नष्ट हो गया, परन्तु उसका दैन्य और विषाद और भी अधिक घनीभूत हो उठा।

मानसिक व्यथा से छटपटाकर राधा ने करवट बदली और तभी एक गम्भीर भावावेश मानो बलात् उसके अन्तस्तल से उठा और एक गहरी ठण्डी सांस के सहारे मुंह की राह बाहर निकल गया। ओह! उसका पति उसे कितना प्यार करता है! और वह अपने पति के कोमल हृदय को लगातार आघात पहुंचाए जा रही है!

राधा की भावुकता और भी अधिक बढ़ गई और उसकी आंखों में आंसू भर आए। असीम मानसिक व्यथा से छटपटाकर राधा ने अंगड़ाई ली और तब अचानक उसके हाथ सिरहाने से कुछ ही दूर पड़ी बांस की उस छोटी-सी बांसुरी से जा टकराए।

राधा के डूबते हुए हृदय को मानो एक सहारा मिल गया। वह उठकर बैठ गई और उसके होंठ मानो बांसुरी बजाने को व्याकुल हो उठे। परन्तु साथ

ही उसे खयाल आया कि साथ के कमरे मे उसके पतिदेव सो रहे हैं, और उनकी नींद में बाधा डालना उचित नहीं है।

तब राधा द्वार खोलकर सहन में चली आई। धीरे-धीरे सहन पारकर उसने बाहर का दरवाज़ा भी खोल दिया। बाहर एक छोटी-सी पुष्प-वाटिका थी। राधा क्रमशः इसी पुष्प-वाटिका के अन्धकार में डूब गई और क्षण भर बाद वह सम्पूर्ण वाटिका बांसुरी की मधुरतम तान से भर-सी गई।

मालूम नहीं, कब तक राधा बांसुरी बजाती चली गई। यह भी नहीं मालूम कि वह और कितनी देर तक बांसुरी बजाती चली जाती, यदि आंगन के द्वार पर से कोई पुकार उसके कानों में न पड़ती। भद्रगोप दीन परन्तु कठोर-से स्वर में पुकार रहा था, 'राधा! राधा!'

बांसुरी की एक लम्बी गूंज आसमान मे भरते हुए राधा ने पूछा, 'क्या है प्राणनाथ?'

'रात समाप्त हो जाने की प्रतीक्षा भी तुमसे नहीं हो सकी राधा!'

राधा को इस प्रश्न की आशा न थी। वह चुपचाप खड़ी रही।

भद्रगोप ने जरा और भी कठोर स्वर में कहा, 'इस सम्पूर्ण निर्लज्जता का आखिर अभिप्रायः क्या है राधा?' परन्तु जैसे वेदना ने भद्रगोप के हृदय को नम्र बना दिया। क्षण भर रुककर उसने कहा, 'प्रतीत होता है अब तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।'

राधा ने स्थिर कण्ठ से कहा, 'जिस दिन राधा अपने पति से प्यार करना छोड़ देगी, उस दिन वह जीवित नहीं रह पाएगी नाथ!'

'तो फिर तुम मुझसे इस तरह विमुख क्यों हो गई?'

'मैं तुमसे विमुख नहीं हूं नाथ! बात केवल इतनी ही है कि प्रेम के सम्बन्ध में मेरी धारणाओं में अन्तर आ गया है।'

'वह क्या?'

'वह यही कि प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रेमपात्र पर जैसे एकाधिकार स्थापित कर लेना चाहता है। आज से कुछ समय पहले तक मैं भी ऐसा ही चाहती थी और यदि तुम भी वही चाहते हो तो इसमें विचित्रता कुछ भी नहीं है।'

न जाने क्या सोचकर राधा चुप हो रही।

भद्रगोप ने अत्यधिक आतुरता से कहा, 'तुम रुक क्यों गईं राधा? कहो,

कहती चलो, तुम्हारे प्रेम का यह नया आदर्श क्या है ?'

राधा ने अविचलित भाव से कहा, 'मैं आज समझ गई हूं कि मेरी आत्मा का तोष मेरे भीतर से ही होना चाहिए। प्रेम इस आत्मतोष का उपकरण मात्र है; इससे अधिक उसका व्यक्तिगत दृष्टि से कुछ भी प्रयोजन नहीं। और मैं जो कुछ कह रही हूं, उसका अभिप्राय तो मैं स्वयं भी नहीं जानती प्यारे! कोई बड़ी शक्ति जैसे ज़बर्दस्ती मुझे अपनी ओर खींचे लिए जा रही है, और मैं परवश-सी उसके साथ-साथ खिची जा रही हूं।'

इतना कहकर राधा बहुत ही मधुर स्वर में खिलाखिलाकर हंस पड़ी। सहसा भद्रगोप का हाथ पकड़कर उसने कहा, 'चलो भीतर चलें नाथ!'

और भद्रगोप विमूढ़-सा होकर राधा के साथ चल दिया। जैसे राधा की बात का कोई अभिप्राय उसे समझ न आया हो।

और तब पूरे दो महीनों तक राधा और भद्रगोप में एक तरह का समझौता-सा बना रहा। दोनों ने एक दूसरे को पूरी आज़ादी दे दी। दोनों का यह पृथक्-पृथक् और स्वच्छन्द जीवन इस तरह स्वाभाविक रूप से चलने लगा, मानो वे शुरू ही से इसी अलगाव में पलते आए हैं।

उसी वर्ष के श्रावण की एक बदलीवाली सांझ को भद्रगोप का जी काम-काज में नहीं लगा। आसमान में सुबह ही से घने काले बादल छाए हुए थे; परन्तु वर्षा नहीं हो रही थी। भद्रगोप अकेला ही यमुना पार के जंगलों में सैर के लिए चल दिया।

इधर प्रकृति शान्त थी। जहां तक नज़र जाती थी हरियावल ही हरियावल दृष्टिगोचर हो रही थी। भूमि मखमली घास से मढ़ी थी, वृक्ष हरे-भरे पत्तों से लदे-से पड़े थे, और पिछली रात की बौछार तथा हवा ने उन्हें धो-पोंछकर मानो और भी उजला कर दिया था।

अचानक भद्रगोप को ख्याल आया कि राधा भी तो दिन भर इसी जंगल में बिताती है। उसके जी में यह इच्छा बड़ी प्रबलता के साथ उत्पन्न हुई कि वह देखे कि राधा यहां आकर क्या करती है। आज तक कभी उसने राधा का पीछा नहीं किया था। पीछा करने का विचार तक भी कभी उसके जी में नहीं आया था। परन्तु आज? बरसात और बदली के इस दिन में, इस सुनसान

हरे-भरे जंगल में पहुंचकर जैसे उसका जी अपनी पत्नी की वर्तमान जीवनचर्या को देखने के लिए सहसा उतावला-सा बन गया। कदम और ढाक के उस सघन उपवन में उसकी दृष्टि मानो भेदती हुई-सी कुछ खोजने लगी। सहसा उसे सुनाई दिया कि पश्चिम दिशा में बहुत दूर पर कहीं बांसुरी बज रही है। भद्रगोप शीघ्रता से उसी ओर चल दिया।

ज़रा निकट पहुंचकर भद्रगोप ने सुना, कम से कम ३५-४० बांसुरियों का यह सम्मिलित स्वर था। इससे अधिक मधुर संगीत भद्रगोप ने आज तक कभी अपने जीवन में नहीं सुना था। भद्रगोप के पांव आप ही आप बड़ी शीघ्रता से उठने लगे।

वह संगीत सहसा रुक गया। जैसे घने अन्धकार में प्रबल आलोक देने वाला कोई दीपक एकाएक बुझ जाए। तो भी भद्रगोप की चाल धीमी नहीं हुई। वह बड़ी शीघ्रता से उसी ओर बढ़ने लगा, जिधर से कुछ ही क्षण पूर्व बांसुरी का वह अश्रुतपूर्व सम्मिलित संगीत उसे सुनाई दिया था।

सहसा भद्रगोप को वह दृश्य दिखाई दिया, जिसकी वह कभी कल्पना भी न कर सकता था। सारा संसार भी मिलकर यदि एक स्वर से भद्रगोप को वह बात सुनाता, तो वह उसपर हरगिज़-हरगिज़ विश्वास न करता। कदम के घने झुरमुटों की ओट में एक छोटा-सा खुला मैदान है। उसके निकट स्वच्छ जल का एक सरोवर है। मैदान के चारों ओर हज़ारों-लाखों मनोहर फूल खिले हुए हैं। भद्रगोप ने देखा, इस मैदान मे उसकी पत्नी राधा टांगें फैलाकर बैठी हुई है, और एक सांवला युवक उसकी जांघ पर सिर रखकर लेटा हुआ है। भद्रगोप ने आंखें मलकर अपने लिए अचिन्त्य और अकल्पनीय इस दृश्य को पुन: देखा। हां, वह सचमुच राधा ही तो है। राधा! उसकी पत्नी! भद्रगोप आगे बढ़ा। उसे सुनाई दिया, कोई धीमे पर स्पष्ट स्वर में कह रहा था—'राधा, मेरे सिर मे दर्द हो रहा है। ज़रा दबा तो दो!'

और राधा सचमुच उस युवक का सिर दबाने लगी। भद्रगोप चुपचाप खड़ा रहकर यह सब देखता रहा। उस युवक के सिर पर हाथ फेरते-फेरते राधा धीमे परन्तु अविकम्पित स्वर में एक मधुर गीत गुनगुनाने लगी। जैसे माता अपने बच्चे को लोरी देकर सुलाना चाहती हो।

भद्रगोप से अब रहा नहीं गया। वह आगे बढ़ा और कदम की ओट छोड़-

कर शीघ्रता से राधा के सामने जा खड़ा हुआ। परन्तु आश्चर्य यह कि भद्रगोप को इस तरह अचानक अपने सम्मुख पाकर भी राधा न तो चौंकी और न घबराई ही। श्यामल युवक अभी तक उसी तरह आंखें बन्द किए पड़ा था। शायद उसे नींद आ गई थी। राधा ने सिर्फ सिर हिलाकर भद्रगोप के प्रति इशारा किया कि वह बोले नहीं। इस भय से कि कहीं उस युवक की नींद न उचट जाए।

इन परिस्थितियों में भद्रगोप क्या करे? वह राधा से अपनी प्रतिहिंसावृत्ति चरितार्थ करे, उस युवक को ललकारे अथवा अपना ही सिर धुन ले!—भद्रगोप को कुछ भी सूझ नहीं पड़ा। जिस तरह जबर्दस्त चोट खाकर सिर भन्ना जाता है, दर्द तक भी अनुभव नहीं करता, उसी तरह भद्रगोप का अन्तरंग-बहिरंग सभी कुछ मानो पूर्ण रूप से मूर्च्छित-सा हो गया। राधा से कुछ भी कहे-सुने बिना वह निश्शब्द धीरे-धीरे वापस लौट चला। राधा ने उसे ठहरने का इशारा भी किया; परन्तु इसकी उसने कोई परवाह नहीं की।

और उस सांझ को जब राधा अपने घर पहुंची, तो उसे भद्रगोप के दर्शन नहीं हुए। राधा का परित्याग कर वह कहीं अज्ञातवास के लिए चला गया था।

और एक दिन वह युवक भी वृन्दावन से चुपचाप खिसक गया। शायद उसे कहीं से अपने कर्तव्य की पुकार सुन पड़ी थी। उसके जाते ही सम्पूर्ण वृन्दावन ने देखा कि जमुना-पार के जंगल में एक युग के बाद फिर से वही सन्नाटा व्याप्त हो गया है।

वृन्दावन-निवासियों को सबसे अधिक आश्चर्य इस बात से हुआ कि उस युवक के चले जाने पर भी राधा के चेहरे पर उदासी की रेखा तक भी दिखाई नहीं दी। देखने में राधा पूर्णतया प्रसन्न और सन्तुष्ट प्रतीत होती थी। परन्तु उसका जीवन सम्पूर्णतः बदल गया था। खुले आम बांसुरी बजाना और घर में बैठे अथवा राह-बाट पर आते-जाते उस युवक के सम्बन्ध में गीत गाना ही उसका एकमात्र विनोद था। लोग समझते थे कि वह आपे में नहीं है।

फिर भी राधा वृन्दावन भर में बदनाम हो गई थी। पति ने उसका परित्याग कर दिया था। लोगों का ख्याल था कि अपने पति की उपेक्षा कर उसने

अपने प्रेमी का आश्रय लिया है, परन्तु जब उसका वह कथित-प्रेमी भी उसे छोड़कर चला गया, तो वृन्दावन-निवासियों को इस बात से आश्चर्य तो अवश्य हुआ; परन्तु राधा के सम्बन्ध में उन्होंने अपनी धारणा नहीं बदली। वह सम्पूर्ण नगर में असती समझी जाती है। भले घरों की बहू-बेटियों ने उससे मिलना छोड़ दिया है। राह चलते लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं, परन्तु राधा अपने चारों ओर की इन परिस्थितियों को नितांत उपेक्षा के साथ देखती है। मानो सम्पूर्ण नगर में उसके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं रहता। लोग उसे अच्छा समझें या बुरा, राधा को इस बात की रत्ती भर भी परवाह नहीं है।

और समय बीतता चला जाता है।

सात बरस बाद।

वृन्दावन में बहुत दिनों से कतिपय अमंगलपूर्ण अफवाहें फैल रही थीं। सुना जाता था कि इन्द्रप्रस्थ के अधीश्वर महाराज युधिष्ठिर तथा उनके भाई सम्पूर्ण आर्यावर्त्त में अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित करना चाहते हैं, और बहुत शीघ्र गोपों का वृन्दावन भी उनके आक्रमण से बचा नहीं रहेगा। यह भी प्रसिद्ध था कि वृन्दावन-निवासियों से सुपरिचित वही सांवला-सलोना युवक आज महाराजा युधिष्ठिर का मन्त्रदाता गुरु बना हुआ है। उस दिन का वही निठल्ला युवक आज सम्पूर्ण पाण्डव-साम्राज्य में अपने युग का सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ माना जाता है, यह सुनकर वृन्दावन-निवासियों के आश्चर्य का पारावार नहीं था।

और ये सब अफ़वाहें आखिर सच साबित हो गईं। महाराज युधिष्ठिर का एक दूत वृन्दावन के गोपराज के पास अधीनता स्वीकार करने अथवा युद्ध देने का सन्देश लेकर आ पहुंचा। वृन्दावन के क्षत्रिय और गोप पाण्डवों की शक्ति से भली प्रकार परिचित थे; परन्तु फिर भी उन्होंने कायरता नहीं दिखाई। आत्म-समर्पण की बजाय आत्माहुति का मार्ग उन्होंने अधिक पसन्द किया। सम्पूर्ण वृन्दावन में युद्ध की तैयारियां होने लगीं। इस अवसर पर भद्रगोप भी अपने अज्ञातवास से लौट आया, और वह वृन्दावन की सेना का सेनापति नियुक्त हो गया।

राधा से भी यह सब छिपा नहीं रहा। उसका पति इतनी मुद्दत के बाद

वृन्दावन में वापस आकर भी उससे मिलने नहीं आया। उसका कथित प्रेमी आज वृन्दावन का सबसे बड़ा शत्रु है। पाण्डव-सेनापति अर्जुन के साथ वह भी इस नगर पर आक्रमण करने आया है। वृन्दावन भर में वह महामारी और अकाल के समान अप्रिय समझा जाता है। यह सब जानते हुए भी मानो राधा इन सब बातों से बेखबर है। वह आज भी उसी प्रकार अपने उसी कथित प्रेमी के सम्बन्ध में वृन्दावन के गली-कूचों में गीत गाती फिरती है और आज भी उसकी बांसुरी की लय सुनकर पशु-पक्षियों तक के शरीर में सिहरन उत्पन्न हो जाती है। नगर की स्त्रियां राधा को गालियां देती हैं, नागरिक उसे पागल समझते हैं और वृन्दावन के नटखट बालक उसके पीछे हू-हा करते हुए दौड़ते हैं, परन्तु राधा इन सबसे—अपने चारों ओर की स्थूल परिस्थितियों से पूरे तौर से अनासक्त है। वह किसी बात की रत्ती भर भी परवाह नहीं करती।

युद्ध के इन भयानक दिनों में भी एक दिन राधा ने अभिसार करने का निश्चय किया।

काली अंधेरी रात थी। राधा ने रात ही के समान काले कपड़े पहने, आंखों में उसने काजल लगाया, मांग में गहरे लाल रंग का सिन्दूर भरा, माथे पर बिन्दी दी और हाथों तथा पैरों पर आलक्तक रस लगाया। रेशम के एक बहुत महीन काले वस्त्र से उसने अपना मुंह ढंका। आबनूस की एक बहुत ही सुन्दर बांसुरी अपने हाथ में लेकर राधा चुपचाप नगर से बाहर निकल गई।

रात का दूसरा पहर समाप्त होते न होते सम्पूर्ण पाण्डव-सेना बहुत दूर पर बांसुरी की एक मधुरतम तान सुनकर सहसा विमुग्ध-सी हो गई। बांसुरी की उस लय में मानो कोई व्यक्ति अपने प्राणों की कोमलतम अनुभूति को घोलता चला आ रहा था। वह व्यक्ति भी कोई पुरुष नहीं, एक कोमलांगी नारी। पाण्डव-शिविर के वातावरण में यह तान नशे की खुमारी के समान छा-सी गई।

कुछ देर के बाद सैनिकों ने देखा कि बांसुरी की स्वर-लहरी के साथ-साथ एक कृष्णवसना छायामूर्ति-सी संगीत की मूर्त्त प्रतिकृति के समान अन्धकार से धीरे-धीरे पृथक् होकर पाण्डव-शिविर की ओर बढ़ती चली आ रही है।

बांसुरी का स्वर रुक गया और उसकी बजाय बहुत ही मधुर और स्पष्ट स्वर में सुनाई देने लगा—

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ।

एक पहरेवाले ने आगे बढ़कर पूछा, 'कौन है ? दोस्त या दुश्मन ?'

छायामूर्त्ति ने कोई जवाब नहीं दिया ।

पहरेदार ने कड़कती आवाज़ में कहा, 'खड़े रहो ।'

छायामूर्त्ति खड़ी भी नहीं हुई ।

अनेक पहरेदारों ने कमानों पर तीर चढ़ा लिए । परन्तु इसी समय किसी ने जैसे पहचानकर कहा, 'ओह, यह तो कोई नारी है !'

कोई और बोला, 'मालूम होता है, अभिसार के लिए निकली है ।'

वह स्थान सैकड़ों सैनिकों की हंसी से गूंज-सा उठा; परन्तु छायामूर्ति अब भी विचलित नहीं हुई । उसने निकट आकर पूछा, 'मुरारी कहां है ?'

एक सेनाध्यक्ष ने कहा, 'पहले तुम बतलाओ कि हो कौन ?'

छायामूर्त्ति ने जवाब दिया, 'मैं हूं राधा ।'

सेनाध्यक्ष जैसे कुछ निर्धारित न कर सका कि उसे इस समय क्या करना चाहिए । इसी समय राधा ने कहा, 'तुम मुरारी से जाकर इतना कह देना कि उनकी राधा आई है ।'

सम्राट् युधिष्ठिर के मन्त्रदाता श्रीकृष्ण की अभिसारिका ! सम्पूर्ण सैनिक आश्चर्यचकित-से रह गए ।

इसके कुछ ही क्षणों बाद राधा और श्रीकृष्ण आमने-सामने खड़े थे । श्रीकृष्ण ने कहा, 'तुम मुझे भूल तो नहीं गईं राधा ?'

राधा ने कहा, 'मैं क्या कभी तुम्हें भूल सकती हूं प्यारे !'

कृष्ण ज़रा विशेष भाव से मुस्कराए और इसी समय अलसाकर उन्होंने अंगड़ाई लेनी शुरू की । शिविर के द्वार पर परदा पड़ा हुआ था और भीतर राधा और कृष्ण को छोड़कर और कोई भी नहीं था । सहसा राधा ने अपने कपड़ों के भीतर से एक तेज छुरी निकाली और बिजली की तेज़ी से श्रीकृष्ण

पर वार किया। परन्तु वह सफल न हो सकी। ज़रा भी शब्द किए बिना श्रीकृष्ण वह वार साफ़ बचा गए। जैसे वह राधा के अभिसार के उद्देश्य को पहले ही से जानते हों; ठीक उसी तरह, जिस तरह बरसों पहले जंगल में भद्रगोप की उपस्थिति का आभास पाकर उन्होंने राधा की जांघ पर सिर रखकर लेटने का अभिनय किया था। एकाएक राधा ने पाया कि उसका छुरी वाला हाथ श्रीकृष्ण की मज़बूत जकड़ में है।

राधा चुप थी; परन्तु उसके चेहरे पर उद्वेग, भय या क्रोध का चिह्न तक भी नहीं था। धीरे-धीरे वह छुरी राधा के हाथों से लेकर श्रीकृष्ण ने उसे खुला छोड़ दिया और बहुत शान्त भाव से पूछा, 'तुमने यह क्या किया राधा ?'

'तुम मेरे वृन्दावन के परम शत्रु हो। तुम हमें पराधीन बनाने आए हो!'

'फिर भी राधा, क्या तुम भूल गईं कि मैं तुम्हारा मुरारी हूं ? मैं वही मुरारी हूं, जिनसे कोई अपराध, कोई भूल या कोई अनाचार हो ही नहीं सकता।'

'मैं यह सब जानती हूं मेरे देव ! जो कुछ तुम करने आए हो, वह कभी बुरा नहीं होगा। वही तुम्हारा एकमात्र उचित कर्तव्य होगा। परन्तु वृन्दावन की पुत्री होने के नाते मेरा भी तो एक कर्तव्य है। तुम अपना कर्तव्य पूरा करने आए हो, और देव, मैं भी तो अपना कर्तव्य पूरा करने ही यहां आई थी।'

श्रीकृष्ण के चेहरे पर आह्लादभरी मुस्कराहट की रेखा स्पष्ट दीख पड़ी। कुछ समय तक चुपचाप खड़े रहने के बाद उन्होंने बड़े स्नेह के साथ राधा का हाथ पकड़ लिया और कहा, 'राधा, आर्यत्व की रक्षा और अभिवृद्धि के लिए मैं भारतवर्ष भर में एकछत्र साम्राज्य की स्थापना करना चाहता हूं, और इस कार्य के लिए पाण्डवराज युधिष्ठिर से बढ़कर उपयुक्त व्यक्ति और कोई नहीं जान पड़ा। सम्राट् युधिष्ठिर की अध्यक्षता में जब इस विशाल देश में एक कोने से दूसरे कोने तक एकता की भावना व्याप्त हो जाएगी, तब तुम वृन्दावनवासी भी अपने को पराधीन नहीं समझोगे। परन्तु फिर भी राधा, मैं तुम्हारी खातिर अब वृन्दावन पर अर्जुन को आक्रमण नहीं करने दूंगा। पांडव-सेना कल ही यहां से वापस लौट जाएगी और वृन्दावन को देवभूमि घोषित कर दिया जाएगा।'

और इसके बाद भावुकता से विकम्पित स्वर में श्रीकृष्ण ने कहा, 'राधा, तुम्हारे ही कारण यह धर्मभूमि सदा के लिए महान् तीर्थ गिनी जाएगी। चिरकाल तक तुम्हारा यह वृन्दावन व्याकुल, विक्षुब्ध और सन्तप्त आत्माओं मे न केवल शांति का संचार करता रहेगा, अपितु उन्हें कर्तव्य पालन की राह भी दिखाता रहेगा। तुम धन्य हो राधा !'

राधा की आंखों में आंसू भर आए।

कुछ देर बाद युद्धभूमि की यह विचित्र अभिसारिका बांसुरी बजाती हुई पाण्डव-सेना के शिविरों के निकट से निकलकर पुनः अंधकारमग्न हो गई।

दूसरे दिन जब अकस्मात् ही पाण्डव-सेना वृन्दावन के चारों ओर से अपना घेरा उठाकर प्रयाण करने लगी, तब नागरिकों के आश्चर्य और आह्लाद का कोई ठिकाना नहीं रहा। परन्तु उन्हें कुछ भी समझ नहीं आया कि इस अनहोनी घटना का कारण क्या है।

वृन्दावन के सेनापति भद्रगोप को विश्वस्त रूप से समाचार मिला कि पिछली रात को राधा अभिसार के वेश में नगर से बाहर गई थी। इस कल्पना ने भी भद्रगोप के शरीर भर में कंपकंपी उत्पन्न कर दी कि वृन्दावन की स्वाधीनता कहीं उसकी पत्नी के सतीत्व के मूल्य पर तो नहीं खरीदी गई! परन्तु भद्रगोप ने इस सम्बन्ध में किसीसे कुछ नहीं कहा। राधा को इस बात का अवसर ही न मिला कि वह अपने पति के हृदय में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने का प्रयत्न कर सके और भद्रगोप पुनः अज्ञातवास के लिए कहीं निकल गया।

सम्पूर्ण वृन्दावन में आज भी राधा असती गिनी जाती है। स्वाधीन वृन्दावन के नागरिकों में कहीं भी उसकी प्रतिष्ठा नहीं है। परन्तु राधा अब और भी आत्मतुष्ट हो गई है। उसकी वंशी-ध्वनि अब और भी अधिक मधुर और द्रावक बन गई है। मुरारी-प्रेम के गीत अब वह और भी अधिक तन्मयता के साथ गाती है। वृन्दावन-निवासियों के लिए यह बात दिनोंदिन महान् आश्चर्य का विषय बनती जा रही है कि सम्पूर्ण आर्यावर्त के विभिन्न राज्यों से सम्भ्रान्त आर्य कुलों के सैकड़ों-हजारों भद्र नागरिक बड़े-बड़े कष्ट झेलकर

बृन्दावन पहुंचने लगे हैं, और ये सब उसी 'असती' राधा के दर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं। न जाने किस तरह और किसकी उकसाहट से इन दर्शनार्थियों की संख्या क्रमशः अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही है और बृन्दावन के नागरिक देख रहे हैं कि उनका नगर केवल इसी 'असती' राधा के कारण सम्पूर्ण भारत की देवभूमि-तीर्थनगरी बनता चला जा रहा है।

और जीवन के इन उतार-चढ़ावों से राधा आज भी एकदम अनासक्त है।

बचपन

आज बहुत दिनों के बाद फारस की चिराग नामक घाटी के सूखे नाले मे मटियाला पानी बहता हुआ दिखाई दिया था। हाशिम नींद से जागकर खेतो मे काम करने के लिए जा रहा था। बहता पानी देखकर उसका दिल खुश हो गया। उसके जी में आया, चलो आज काम में थोड़ी देर ही सही। जमादार पूछेगा तो कोई छोटा-मोटा बहाना घड़ लूंगा। जरा फुर्ती करके दिनभर का काम पूरा अवश्य कर लूगा, ताकि मालिक को नुक्स पकड़ने का मौका न मिले। नाले के दोनों किनारों पर शीशम के बृक्ष दो कतारों में छाए हुए थे। ये पेड नाले पर धनी छाया किए हुए थे। इसी छाया में हाशिम नाले के अन्दर पैर लटकाकर बैठ गया। ठण्डी हवा चल रही थी। शीशम के पेड़ों पर बने घोंसलो मे चिड़ियां चहचहा रही थीं। फारस की नंगी धूप में दिन-रात शारीरिक परि-श्रम करने वाला हाशिम इस ठण्डे स्थान पर बैठकर मग्न हो गया। थोड़ी देर के लिए मानो वह यह भूल-सा गया कि वह एक गुलाम है।

हाशिम आफ़ताबखान नाम के एक बहुत बडे और कुलीन भूमिपति का गुलाम था। उसके शरीर और प्राण पर आफताबखान को कानूनी हक प्राप्त था। आफ़ताबखान सम्पूर्ण चिराग़ घाटी का मालिक था। उन दिनों वह फारस के सबसे अधिक शक्तिशाली पुरुषों में समझा जाता था। उसके पास सैकड़ो गुलाम थे। इन गुलामों का सर्वस्व उसीका था। वह चाहता तो इन गुलामो को भूखा रख सकता था, कोड़े लगा सकता था और कभी दिमाग बिगड़ जाने पर इनका खून भी कर सकता था। हाशिम उसका एक मामूली गुलाम था। आफताबखान ने उसे खेती-बाड़ी के काम पर नियुक्त कर रखा था। हाशिम गुलाम होते हुए भी नेक था। वह स्वभाव से भोला, खुशमिजाज, मेहनती और भीरु था। अपने मालिक को यथाशक्ति खुश रखना वह अपना धार्मिक

कर्तव्य समझता था।

हाशिम नाले के किनारे चुपचाप नहीं बैठा था, वह धीरे-धीरे मग्न होकर कुछ गुनगुना रहा था और इसके साथ ही आसपास से सूखे पत्ते बटोर-बटोरकर उन्हें एक-एक कर नाले के बहते हुए पानी में डाल रहा था। पानी के तीव्र प्रवाह में पड़कर जो पत्ता अपने पहले साथियों से आगे निकल जाता था, उसे देखकर हाशिम खुश हो उठता, और जो पत्ता उस साधारण से नाले की छोटी-मोटी भंवरगेरियों में पड़कर पानी में ऊब-डूब करने लगता, उसकी ओर वह बड़ी करुणा और सहानुभूति के साथ देखता था।

हाशिम अपनी इसी धुन में मस्त था कि अचानक अपने पीछे से उसे एक अत्यधिक कोमल और मधुर हंसी सुनाई दी। वह घबराकर उठ खड़ा हुआ। उसकी घबराहट को देखकर वह हंसी और भी मधुर हो उठी। हाशिम ने देखा, उनसे कुछ ऊंचाई पर खड़ा होकर उजले कपड़े पहने हुए, एक तेजस्वी और सुन्दर बालक जोर-जोर से हंस रहा है। उसकी उम्र ५-६ बरस से अधिक नहीं होगी। हाशिम पहचान गया कि वह मालिक का इकलौता पुत्र गुलशन है। मालूम होता था कि वह अभी-अभी कहीं दूर से भागता हुआ यहां आया है। परिश्रम के कारण गुलशन के शुभ्र गालों से ललाई मानो टपकने लगी थी। माथे पर पसीने के छोटे-छोटे बिन्दु दिखाई दे रहे थे। हवा के कारण उसके सुनहले बाल लटों में विभक्त होकर इधर-उधर उड़ रहे थे। उस छोटे बालक का यह स्वरूप अत्यधिक हृदयग्राही था। हाशिम इस देवोपम रूप को देखकर मुग्ध हो गया। बड़े आनन्द से, कुछ क्षणों तक उस हंस रहे बालक को देखने के उपरान्त उसने अपनी आंखें नीची कर लीं।

गुलशन के हाथ में एक बड़ा-सा कागज था। इस कागज़ पर स्याही से कुछ रेखाएं पड़ी हुई थी। जिन दिनों की बात हम कर रहे हैं, उन दिनों एक बड़े आकार का कागज़ कोई मामूली चीज़ नहीं था। प्रतीत होता है कि इस कागज़ को गुलशन जबर्दस्ती अपने पिता से छीन लाया था। इस कागज़ पर किसी नई इमारत का नक्शा बनाया जा रहा था। पिता से हाथ छुड़ाकर, यह कागज़ लिए हुए वह इतनी दूर भाग आने में सफल हुआ था, सम्भवत: उसकी इस बेहद खुशी का यही कारण था। हाशिम को घबराया हुआ देखकर बालक

गुलशन और भी अधिक उच्च स्वर से हंस पड़ा। उसने पूछा, तुम्हारा नाम क्या है ?'

बूढ़े गुलाम ने बड़ी संजीदगी से कहा, 'हाशिम।'

गुलशन ने कहा, 'अच्छा, काका हाशिम ! मुझे इन कागज की एक नाव बना दो।'

'काका' का सम्बोधन सुनकर हाशिम गद्गद हो गया। उसने गुलशन के हाथ से वह कागज ले लिया। हाशिम के हाथों में हुनर था। उसने शीशम की सूखी लकड़ियां जमाकर उन्हें अपने बसूले से छील-छालकर बराबर कर लिया। अपने कुरते का एक भाग फाड़कर उसने कई रस्सियां तैयार कीं। हाशिम को अपने कपड़े फाड़ते हुए देखकर अबोध बालक ने बड़ी सहानुभूति से कहा, 'हुश, यह क्या करते हो ! फिर पहनोगे क्या ?'

असीम प्रसन्नता से हाशिम को रोमांच हो आया। उसने कोई जवाब नहीं दिया। वह केवल और भी अधिक मनोयोग से बालक की नाव बनाने लगा। २०-२५ मिनटों में नाव का खोल तैयार कर, उसे कागज से मढ़कर बाकायदा एक छोटा-सा जहाज उसने तैयार कर दिया। उसमें मस्तूल और पाल भी लगा दिए। यह सुन्दर-सा छोटा जहाज तैयारकर उसने बालक से कहा, 'यह लो !'

बालक बड़ा प्रसन्न हो गया। उसने बड़े प्रेम से कहा, 'काका हाशिम ! यह तो बहुत अच्छी नाव है। आओ, इसे मिलकर तैराएं।'

हाशिम की आंखों में आनन्द के आंसू छलक आए। उसने मन ही मन इस छोटे बालक के सुखी-जीवन के लिए अपने खुदा से दुआ मांगी।

हाशिम जब अपने खेत के निकट पहुंचा, तब उसके होश गुम हो गए। उसने देखा कि उसके खेत के सम्मुख एक हब्शी जमादार एक बड़ा-सा बेंत हाथ में लिए घूम रहा है। सब गुलाम चुपचाप अपनी-अपनी क्यारियों में अंगूर जमा कर रहे हैं। रोज की तरह न कोई गा रहा है और न आपस में बातचीत ही कर रहा है। हाशिम समझ गया कि बैरॉमीटर के पारे का इस प्रकार सहसा नीचे गिर जाना निकट भविष्य के किस तूफान का द्योतक है। एक गुलाम होकर पूरे दोपहर तक अपनी जगह से गायब रहना कोई हंसी-ठट्ठा नहीं है, यह बात

हाशिम भली प्रकार जानता था। वह आज अपने काम पर पूरे चार घण्टे लेट पहुंचा था।

हाशिम डरते-डरते अभी अपनी क्यारियों के निकट पहुंचा ही था कि हब्शी जमादार ने गरजकर पूछा, 'इतनी देर तक कहां था ?'

हाशिम ने कांपते हुए स्वर में बहाना किया, 'पेट में दर्द हो गया था। चलते-चलते राह में गिर पड़ा था।'

जमादार ने यह जांच करने की आवश्यकता नहीं समझी कि हाशिम सच कह रहा है या झूठ। उन दिनों का यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त था कि गुलाम कभी सच नहीं बोलते। जमादार ने तड़ातड़ ५-७ बेंत हाशिम की पीठ पर जड़ दिए। यदि वह कोशिश करता तो शायद अपने मालिक के पुत्र का नाम लेकर इस यन्त्रणा से छुटकारा पा लेता, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। बेंतों की मार से हाशिम ज़मीन पर गिर गया था, धीरे-धीरे अपनी सूजी हुई पीठ को झाड़-पोंछकर वह उठ खड़ा हुआ। हब्शी जमादार उसकी ओर बड़ी क्रोधपूर्ण नज़र से देखता हुआ किसी दूसरी तरफ चला गया।

हाशिम जानता था कि इस घटना का यही अन्त नहीं हो गया। उसे मालूम था कि यदि आज वह अपना दिनभर के लिए निर्दिष्ट काम समाप्त नहीं कर पाएगा तो शाम के समय उसकी पीठ का चमड़ा बेंतों की मार से उधेड़ दिया जाएगा। इसलिए वह अपने काम में जुट गया। आज वह शैतान की तेज़ी से अपना काम कर रहा था। उसके साथी हैरान थे कि इस बूढ़े में इतनी ताकत कहां से आ गई।

सायंकाल को जमींदार आफ़ताबखान के सहन में सब गुलाम अपनी दिन भर की मेहनत का परिणाम लेकर जमा हुए। हाशिम का उस दिन का काम सन्तोषजनक पाया गया। बूढ़े हाशिम को अब तक चिन्ता की गर्मी क्रियाशील बनाए हुए थी, पर अब उस चिंता से मुक्त होकर वह भारी थकान अनुभव करने लगा। हाशिम अपनी टोकरी लेकर तराजू के पास ही बैठ गया। प्रातः-काल का फाड़ा हुआ कुरता अब भी उसके गले में लटक रहा था। उसकी पीठ बेंतों की मार से सूजी हुई थी। मुंह और दाढ़ी के सफेद बालों पर मिट्टी जमी हुई थी। थकावट के मारे हाशिम का बुरा हाल था।

इसी समय अपनी प्रातःकाल वाली नौका हाथ में लिए हुए बालक गुलश

इस जगह आ पहुंचा। हाशिम को दूर से देखते ही वह उसकी ओर भागा। हाशिम की सम्पूर्ण उदासी और थकावट दूर हो गई, वह उस सुन्दर बालक को तरफ देखकर मुस्कराने लगा।

गुलशन इस समय तक निकट आ गया था। वह मुहारनी रटने लगा, 'हाशिम, हाशिम, बूढ़ा हाशिम, काका हाशिम।'

अचानक बालक की नजर हाशिम की पीठ पर पड़ी। उसकी सूजी हुई पीठ को देखकर बालक ने गम्भीर होकर पूछा, 'यह क्या हुआ काका हाशिम ?'

जन्म का अभागा गुलाम, बूढ़ा हाशिम इस बार सचमुच झूठ बोला। उसने कहा, 'पेड़ से गिर गया था। मामूली-सी चोट आ गई है।'

बच्चों के दिमाग में कोई बात अधिक देर तक नहीं रहती, और यही शायद बचपन की सबसे बड़ी सिफ्त है, जो बच्चों के दिल को कभी स्थायी रूप से मैला नहीं होने देती। अबोध होते हुए भी वे किसी मनुष्य को देखकर यह भाप लेते हैं कि वह उनसे स्नेह करता है या घृणा। साथ ही उस मनुष्य के आखों से ओझल होते ही वे यह भी भूल जाते हे कि वह उनसे प्यार करता था या नफरत। गुलशन भी हाशिम की याद को बहुत शीघ्र भूल गया। उस दिन के बाद वह बहुत दिनों तक हाशिम को दिखाई भी न दिया। फिर भी लोगो मे यह बात बड़े ज़ोर से फैल गई कि हाशिम अपने स्वामिपुत्र का मुहलगा है। लोगो को विश्वास हो गया कि अब शीघ्र ही हाशिम की तूती बोलने लगेगी। इस कारण जहां बहुत-से लोग उससे दबने लगे, वहां उससे खार खाने वाले लोगों की संख्या भी बढ़ गई। यहां तक कि हाशिम को स्वयं भी इस बात का कुछ-कुछ भ्रम हो गया कि जैसे गुलशन पर उसका कुछ विशेष प्रभाव है।

दिन भर का काम-काज समाप्त कर हाशिम अपनी कोठरी के सामने यो ही धीरे-धीरे टहल रहा था कि उसकी दृष्टि दूर पर खड़े होकर पतंग उड़ाते हुए गुलशन पर पड़ी। आज उसे बहुत दिनों के बाद वह तेजस्वी बालक दिखाई दिया था। हाशिम बड़ी शीघ्रता से चलकर उसके निकट पहुंचा। गुलशन अब भी तन्मय होकर अपनी पतंग उड़ा रहा था। हाशिम के भागकर अपनी तरफ आने के कारण उसका ध्यान पल भर के लिए उसकी तरफ गया तो सही, परन्तु

बिना किसी विशेष भाव का प्रदर्शन किए वह फिर से अपनी पतंग उड़ाने मे लग गया।

हाशिम का खयाल था कि गुलशन अब भी मुझे पहचानता है। अतः वह उसकी तरफ देखकर मुस्कराया। परन्तु वह उसका भ्रम था। छोटे बालक को उस दिन की नाव बनाने वाली घटना विस्मृत हो चुकी थी। वह हाशिम को नहीं पहचान पाया।

बालक का यह उपेक्षा का व्यवहार देखकर हाशिम को कुछ दुख तो हुआ परन्तु वह वहां से टला नहीं। स्थिर रूप से खड़े होकर वह उस सुन्दर बालक की चंचलता का निष्पाप आनन्द लूटने लगा।

बालक बड़े प्रयत्न से पतंग उड़ा रहा था। उसकी नजर में उसकी पतग आसमान की छत से टकरा रही थी। परन्तु हाशिम देख रहा था कि बेचारा बालक अभी तक पतंग उड़ाना भली प्रकार नहीं जानता। उसका दिल इस कार्य में गुलशन की सहायता करने के लिए उत्सुक था, परन्तु गुलशन का आज का व्यवहार देखकर उसकी यह हिम्मत न हुई कि वह बालक के हाथ से पतग लेकर उसे और अधिक ऊंचा उड़ा सके।

अचानक बालक गुलशन प्रसन्नता में भरकर हाशिम की ओर देखते हुए चिल्ला उठा, 'अहा ! मेरी पतंग !' शायद उसकी पतंग इस बार दो-तीन फुट और ऊंचाई पर पहुंच गई थी।

हाशिम ने साहस करके बालक के बिना कहे ही उसके हाथ से पतंग ले ली। मालूम होता है कि बालक को हाशिम का यह व्यवहार अच्छा नहीं मालूम हुआ। फिर भी उसने इस बात का विरोध नहीं किया, क्षण भर के लिए वह जैसे भौचक्का-सा होकर खेल में दखल देने वाले इस बूढ़े की ओर देखता रहा।

हाशिम के हाथ कांप रहे थे। उसने अपनी पूरी ताकत से झटके दे-देकर पतग को ऊंचा चढ़ाना शुरू किया। दो-तीन झटकों में ही पतंग दुगुनी ऊंचाई पर चली गई। बालक गुलशन का गम्भीर चेहरा अब प्रसन्नता से खिल उठा। वह अब नाच-नाचकर ताली बजाने लगा।

परन्तु हाशिम की किस्मत खराब थी। अगले ही झटके में वह अभागा पतग का तागा तोड़ बैठा। तूफान में बेपतवार नाव के समान पतंग उच्छृंखल होकर आकाश के एक मार्ग में स्वच्छन्दतापूर्वक चल दी। बालक गुलशन एक क्षण तक

निष्प्रभ-सा खड़ा रहा। अगले ही क्षण वह चिल्लाता हुआ पतंग की ओर भागा। बालक की नज़र ऊपर की ओर थी। थोड़ी ही दूर पर एक पत्थर से ठोकर खाकर सम्पूर्ण चिराग़ बाटी के मालिक का लाड़ला पुत्र ज़मीन पर गिर पड़ा। पतंग छिन जाने के मानसिक कष्ट के बाद यह शारीरिक व्यथा। बालक चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। उसकी टांग पर चोट आ गई थी। कपड़े मिट्टी से भर गए थे।

हाशिम को काटो, तो खून नहीं। वह अचानक यह कैसा कल्पनातीत उत्पात कर बैठा! कुछ क्षणों तक उससे हिला-डुला तक भी न गया। किंकर्तव्यविमूढ़-सी दशा में बैठे हाशिम को दो-एक गुलामों ने पकड़ लिया।

इसी समय उसकी पीठ पर दो-चार गालियों के साथ चमड़े का एक कोड़ा पड़ा। बूढ़ा गुलाम ज़मीन पर गिर पड़ा। खुद मालिक ही गुस्से में भरकर उस पर कोड़ों की बौछार कर रहा था। हाशिम सिसक-सिसककर रोने लगा। सच पूछो तो उसे कोड़ों की मार नहीं रुला रही थी, वह रो रहा था अपनी फूटी किस्मत के उल्टे दांव पर। जमींदार आफताबखान के अनेक गुलाम हाशिम के हाथ-पैर बांधकर उसे जेलख़ाने में ले गए।

यह घटना जिस रूप में आफ़ताबखान के सम्मुख रखी गई, उसे सुनकर जमींदार के जी में आया कि हाशिम को जीते जी ज़मीन में गाड़ दूं। उस ज़माने का कोई भी कानून या कोई भी मज़हब उसकी इस इच्छा के मार्ग में बाधक बनकर खड़ा होने को तैयार नहीं था, फिर भी न जाने क्या सोचकर उसने यह मामला कुछ समय के लिए टाल दिया। हाशिम के साथ रहनेवाले कुछ गुलामों ने जमींदार को सुनाया था, 'हुज़ूर! आका गुलशन मैदान में अपनी पतंग उड़ा रहे थे। उन्हें अकेला पाकर यह हरामखोर उनके पास गया और सन्नाटा देखकर इसने उनकी पतंग तोड़ डाली और उन्हें धक्का देकर ज़मीन पर गिरा दिया। यह वहां से भागना ही चाहता था कि हम लोगों ने इसे पकड़ लिया।'

दूसरे दिन आफ़ताबखान ने अपने बच्चों को बुलाकर प्यार से पूछा—क्यों गुल! कल उस गुलाम ने तुझे धक्का दिया था?'

गुलशन ने सिर हिलाते-हिलाते कहा, 'मुझे थोड़ा ही दिया था? तुम्हें दिया था।'

पिता ने पुत्र के कोमल बालों में उंगलियां चलाते हुए पूछा, 'तुम्हारी पतंग उसने तोड़ी थी ?'

गुल के हाथ में उस समय भी एक पतंग थी। उसने उसे दिखाकर कहा, 'नहीं अब्बा ! मेरी पतंग तो यह है।'

कल की चोट से गुलशन की टांग का एक भाग नीला पड़ गया था, आफताबखान ने उसे दिखलाते हुए कहा, 'तो फिर तुम्हें यह क्या हो गया है ?'

आफ़ताबखान की कलाई पर फारसी के नीले अक्षरों में उसका नाम खुदा हुआ था। गुलशन ने पिता की कलाई पकड़कर पूछा, 'तो फिर तुम्हें यह क्या हो गया है ?'

इस बार मुस्कराकर पिता ने अपने लाड़ले और चंचल पुत्र को छाती से लगा लिया। उसे विश्वास हो गया कि इस अहमक लड़के से कोई बात निकलवाना आसान काम नहीं है। इससे कल की सच्ची घटना किसी भी प्रकार ज्ञात न हो सकेगी। बालक गुलशन को यह क्या मालूम था कि जिन प्रश्नों को वह इस प्रकार हंसी में टाल रहा है, उन्हींके उत्तर पर अभागे हाशिम का जीवन आश्रित है। असल में बालक के अन्तस्तल पर कल की घटना का कोई चिह्न तक भी अवशिष्ट न रहा था।

भूमिपति आफताबखान ने एक मटियाला कागज उठाकर उसपर बेपरवाही से लिख दिया, 'आगामी जुमारात को मेरी मौजूदगी में हाशिम की नंगी पीठ पर एक सौ कोड़े लगाए जाएं।

निर्धारित मृत्यु से केवल कुछ ही घण्टे पूर्व हाशिम को इस बार फिर उस बाल-मूर्ति के दर्शन हुए। आज शायद उसके जीवन का अन्तिम दिन था। नंगी पीठ पर १०० कोड़ों की मार कोई मामूली सजा नहीं है। इससे पूर्व कई बार हाशिम अपनी आंखों से देख चुका था कि जमींदार के हब्शी जमादार किस बेरहमी से दण्डित गुलामों पर कोड़े फटकारते हैं। पांच-सात कोड़ों की मार से ही आदमी की पीठ का मांस चीथड़े-चीथड़े होकर उड़ने लगता है। और उसके बाद ? हाशिम उसके बाद कुछ सोच न सका। केवल दो-एक घंटे की समाप्ति पर ही वह स्वयं प्रत्यक्ष कर लेगा कि उसके बाद क्या होता है।

हाशिम सिर झुकाकर यही सब बातें सोच रहा था कि चंचल गुलशन उसके

द्वार के सींकचों के पास आकर खड़ा हो गया। हाशिम के चिन्तित और उदास चेहरे को देखकर बालक का ध्यान अनायास उसकी तरफ आकृष्ट हो गया। आहट सुनकर हाशिम ने जो सिर उठाया तो उसकी नजर गुलशन पर पड़ी। आज गुलशन को देखकर सबसे पहले उसके दिल में यही भाव आया—'वही है यह चपल बालक, जिसकी एक चीख के कारण आज थोड़ी ही देर में बड़ी निर्दयता से मेरे प्राण ले लिए जाएंगे।'

हाशिम, अभागा और बूढ़ा हाशिम बच्चों की तरह से फफककर रो उठा।

हाशिम को रोता हुआ देखकर शायद बालक का दिल भी पसीज उठा। उसने बड़ी सहानुभूति के स्वर में पूछा, 'क्यों, रोते क्यों हो?'

बिना जवाब दिए हाशिम उसी तरह अत्यन्त करुण स्वर में रोता रहा।

बालक ने पुनः पूछा, 'क्या तुम्हें भूख लगी है?'

हाशिम ने कोई जवाब नहीं दिया, केवल उसके रोने का वेग और भी अधिक बढ़ गया। गुलशन की जेब में पिस्ते भरे हुए थे। एक मुट्ठी पिस्ते हाशिम के सामने डालकर बिजली के समान चंचल वह बालक वहां से भाग गया।

इसके थोड़ी ही देर बाद यम के दूत के समान भयंकर एक हब्शी ने हाशिम की कोठरी का दरवाज़ा खोलकर कहा, 'चलो, वक्त हो गया।'

गुलशन के फेंके हुए पिस्ते कोठरी के सींकचों के पास अब भी उसी तरह बिखरे हुए पड़े थे।

उन दिनों गुलामों को इस तरह की बड़ी-बड़ी सजाएं देने का काम बड़े समारोह के साथ किया जाता था। जैसे यह भी कोई त्योहार हो। समझा जाता था कि इससे अन्य गुलामों के हृदयों पर बहुत वांछनीय मनोवैज्ञानिक संस्कार पड़ते हैं। आज भी आफ़ताबखान के सम्पूर्ण गुलाम कोड़े लगाने की टिकटी को घेरकर कतारों में खड़े किए गए थे। टिकटी से कुछ दूरी पर, गुलामों की कतारों के बीच में, एक ऊंचा चबूतरा था। इस चबूतरे पर कालीन बिछाकर एक शाही ढंग की कुर्सी रखी गई थी। इसपर भूमिपति आफ़ताबखान बड़े रौब के साथ बैठा हुआ था।

हाशिम को नंगाकर टिकटी से बांध दिया गया था। पास ही मिट्टी के

एक लम्बे बर्तन में, तेल में भीगे हुए बेंत रखे थे। एक हट्टा-कट्टा हब्शी इन बेंतों की जांच-पड़ताल कर रहा था। सहसा जमींदार का हुक्म हुआ''' 'होशियार!'

हब्शी जमादार ने कोड़ा सम्भाल लिया; और बूढ़ा हाशिम आंखों में आंसू भरकर खुदा की इबादत करने लगा।

जमींदार अगली आज्ञा देने ही वाला था कि बालक गुलशन कहीं से भागा हुआ वहां आ पहुंचा। वह सीधा अपने पिता के पास चला आया। बालक की ओर ध्यान बंट जाने के कारण आफताबखान को अगला फरमान देने में कुछ विलम्ब हो गया। कोड़ा वाला जमादार अभी तक अपना कोड़ा आसमान में ऊंचा किए खड़ा था।

खुदा से इबादत करते हुए भी हाशिम की दृष्टि इस चंचल बालक पर पड़ ही गई। उस बेचारे की आंखों से दो बूंद आंसू, उसके सूखे हुए कपोलों को भिगोते हुए नीचे की ओर खिसक गए। हाशिम के हाथ पीछे की ओर बंधे हुए थे, अतः वह उन्हें पोंछ नहीं सका। ठीक इसी समय बालक गुलशन की नजर इस बूढ़े गुलाम पर पड़ी। बालक सहसा मचल पड़ा, 'इस आदमी को क्यों बांधा है? इसे छोड़ दो। ऊं! ऊं! ऊं!'

परन्तु यह समय लाड़-प्यार का नहीं था। यह समय था सैकड़ों गुलामों के मालिक आफ़ताबखान के रोब प्रदर्शन का। जमींदार ने बालक की परवाह नहीं की। बाएं हाथ से गुलशन को पकड़कर, दायां हाथ ऊंचा उठाकर वह कोड़ों की मार शुरू करने का आदेश देने ही वाला था कि बालक और भी अधिक ऊंचे स्वर में मचल उठा—'ऊं! ऊं! छोड़ दो! मैं नहीं मानता! छोड़ दो! ऊं! ऊं! ऊं!'

पिता ने अब भी अपने लाड़ले पुत्र की तरफ ध्यान नहीं दिया। उसने अपना दायां हाथ उठा ही दिया। अभागे हाशिम की पीठ पर पहला कोड़ा पड़ने ही वाला था कि बालक गुलशन जमीन पर लोट-लोटकर ऊंचे स्वर में रोने लगा—'ऊं! ऊं! ऊं!'

जमींदार का उठा हुआ हाथ एकाएक नीचे झुक गया। उसने कहा—'बड़ा जिद्दी लड़का है।' अगले ही क्षण आफ़ताबखान ने गुलशन को अपनी गोद में उठा लिया। इसके बाद हाशिम की ओर मुखातिब होकर कहा—'तुम्हारे छोटे आक़ा के हुक्म से तुम्हें इस बार माफ किया जाता है।'

दोनों हब्शी जमादारों ने शीघ्रता से हाशिम को टिकटी से खोल दिया।

बालक गुलशन अपने पिता की गोद से उतरकर भागा हुआ हाशिम के पास पहुंचा। अबोध बालक ने अत्यधिक सरल मुस्कराहट के साथ पूछा—'बुड्ढे! तूने पिस्ते खा लिए थे या नहीं?'

निम्बो

शामपुर में मशहूर था कि निम्बो के समान तेज़ स्वभाव की लड़की गांव भर में दूसरी नहीं है। उसकी ज़बान कैंची की तरह चलती थी। आवाज़ उसकी तीखी थी—सीधा दिल में जाकर चुभनेवाली। वह किसीकी डाट-फटकार बरदाश्त न कर सकती थी। कोई कुछ कहता, तो दो की चार सुनाती। यह भी नहीं कि वह पहल न करती हो। शरारत उसकी रग-रग में भरी हुई थी। वह पन्द्रह साल की हो गई थी, मगर पनघट या तालाब पर जाकर, नहाती हुई स्त्रियों को तंग करने में उसे अभी तक अपार आनन्द का अनुभव होता था। किसीके कपड़े छिपा देती, किसीकी धोती गीली कर देती, और किसीका भरा हुआ घड़ा उलट देती। इसपर भी कोई कुछ कहता, तो झट लड़ने को तैयार! यही कारण था कि वह गांव भर में शैतान के समान मशहूर थी।

निम्बो पन्द्रह साल की हो गई थी, और अभी तक उसका ब्याह नहीं हुआ था। गांव के लोगों में यह बात आलोचना का विषय थी। देखने-सुनने में निम्बो खासी आकर्षक थी। बड़ी-बड़ी और हर समय गतिमान् रहनेवाली सुन्दर आंखें, चंचल और सुकुमार होंठ। चेहरे की बनावट भी सौन्दर्यपूर्ण थी। रंग साफ और गालों पर स्वास्थ्य की बाल-सुलभ लालिमा थी। यह सब होते हुए भी अभी तक उसका विवाह नहीं हो सका था। वह अपने सम्पन्न मां-बाप की इकलौती और लाड़ली सन्तान थी। इससे एक तो यों भी उसके मां-बाप को उसके ब्याह की जल्दी नहीं थी, उसपर निम्बो के अभी तक अत्यधिक चंचल स्वभाव को देखकर उन्हें कहीं उसके विवाह की बातचीत करने का साहस भी न होता था। दो-एक जगह बातचीत चली भी थी, परन्तु दोनों बार लड़के वालों को गांव के अन्य लोगों ने बहका दिया था, कि इतनी चंचल और लड़ाकी घर में लाओगे, तो किसी दिन घर ही बरबाद हो जाएगा। नतीजा यह हुआ

था कि निम्बो अभी तक कुमारी ही थी।

आखिर निम्बो का भी विवाह हो ही गया। पास ही के एक और गांव अजीतपुर के जमींदार का लड़का तेजनारायण अलाहाबाद के एक कालेज के द्वितीय वर्ष में पढ़ता था। तेजनारायण के पिता पुराने विचारों के व्यक्ति थे और उनका विश्वास था कि उन्नीस साल की उम्र तक जिन लड़कों का विवाह नहीं हो जाता, वे जरूर ही बिगड़ जाते हैं। इसलिए दसहरे की छुट्टियों में जब तेजनारायण अपने घर आया, तो उसके पिता ने एक सप्ताह के भीतर ही सुन्दरी निम्बो से उसका विवाह कर दिया। तेजनारायण पहले तो विवाह के लिए तैयार ही न होता था, मगर जब गांव के तालाब पर ऊधम मचाती हुई निम्बो का सौन्दर्य उसे चुपके से दिखा दिया गया तो विवाह कर लेने में उसे कोई आपत्ति न हुई।

निम्बो का विवाह तो हो गया, मगर दिल से वह अभी तक कुंआरी ही थी। विवाह के नाम से उसे चिढ़ थी। 'मर्द' की कल्पना से भी वह भय खाती थी। उसके मानसिक राज्य में पुरुषों के लिए कोई स्थान नहीं था। विवाह वाले दिन पहले तो वह खूब गरम हुई। अपने मां-बाप को भी उसने खूब खरी-खोटी सुनाई। इसपर भी जब उसकी किसीने न सुनी, तो उसने अपने सब कपड़े फाड डाले। मगर उसके मां-बाप फिर भी न पसीजे। आखिरकार सब तरफ से निराश होकर वह रोने लगी—खूब सिसक-सिसककर। जैसे उसका दिल टूट गया हो। सब ओर से निराश होकर आखिर उसने आत्मसमर्पण कर दिया, और तब उसका विवाह हो ही गया।

तेजनारायण का विवाह तो हो गया, पर सुहाग रात का अनुभव उसके लिए दुनिया भर से निराला था। दिन भर की प्रतीक्षा के बाद आखिर रात हुई और तेजनारायण अपने शयन-कक्ष में बैठकर नव वधू के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसे प्रतीक्षा की यह बेकली तो बहुत देर तक नहीं सहनी पड़ी, परन्तु उसके बाद जो कुछ हुआ, वह तेजनारायण के लिए बहुत उत्साहवर्धक नहीं था।

निम्बो जब से इस घर में आई थी, तब से पूर्ण निष्क्रिय असहयोग की नीति का अवलम्बन किए हुए थी। दिन भर न उसने कुछ खाया था और न

पिया था ; न वह नहाई-धोई, और न उसने कपड़े ही बदले । वह किसीसे बोली तक भी नहीं । उसकी एक रिश्ते की बहन ससुराल में भी साथ आई थी । निम्बो दिन भर उसीका आंचल पकड़े बैठी रही; जैसे चिड़िया का बच्चा बाज के डर से अपनी मां को छोड़ना ही न चाहता हो ।

रात हुई तो निम्बो की बहन उससे यह कहकर कि 'चलो, अब सोने के लिए चलें, निम्बो को तेजनारायण के कमरे में ले गई, और कमरे में निम्बो के प्रवेश करते ही, शीघ्रता से उसने दरवाज़े के बाहर सांकल लगा दी । निम्बो जैसे पिंजरे में फंस गई । उसका दिल तड़प उठा, और वह जोर-ज़ोर से दरवाजे को खींचने लगी । जैसे इस कमरे के वातावरण में उसका दम घुट रहा हो ।

दो-एक मिनट तक वह दरवाजे को ज़ोर-ज़ोर से पीटती रही । मगर बाहर से उसकी इस बेचैनी भरी पुकार का किसीने जवाब नहीं दिया ।

निम्बो का दिल टूट गया । दरवाज़ा खटखटाना छोड़कर उसी जगह ज़मीन पर बैठ गई, और बड़े करुण स्वर में पुकारने लगी—'बहनजी ! हाय बहनजी !'

इसी समय उसे अपने कन्धों पर किन्हीं हाथों का स्पर्श अनुभव हुआ । इस स्पर्श में एक विशेष तरह की कोमलता थी, जिसे अनुभव करके भी निम्बो ने उसकी परवाह नहीं की । चिल्लाना छोड़कर उसने पीछे की ओर देखा, उसका पति उसे आश्वासन देने आया था ।

निम्बो का दिल पूर्ण रूप से विद्रोही हो उठा ।—यह नालायक किस हक से मुझे इस तरह एकान्त में अपनाने आया है ! उसने तीव्रता के साथ तेजनारायण के हाथ को दूर झटक दिया ।

तेजनारायण हिम्मत नहीं हारा । अब की उसने पास ही खड़े रहकर बड़े प्रेम के साथ पुकारा—'निम्बो !'

निम्बो ने तेजनारायण की ओर देखा तक भी नहीं ।

तेजनारायण ने पुचकारकर कहा, 'मेरी निम्बो !'

निम्बो को जैसे आग लग गई ; उसने कोई जवाब ही नहीं दिया, मगर दरवाज़े के पास से उठकर वह पलंग के पिछवाड़े मे चली गई । जैसे वह तेजनारायण से अधिक से अधिक दूर रहना चाहती हो ।

तेजनारायण अब भी निराश नहीं हुआ। अब की उसने पलंग को खींचकर इस तरह डाल दिया, जिससे निम्बो को कहीं और भागने का अवसर न मिले।

निम्बो ने देखा कि वह किलेबन्दी से छूट नहीं सकेगी। इसलिए अब उसने भागने का प्रयत्न ही नहीं किया। इसी समय तेजनारायण ने धीरे से जाकर उसे पकड़ लिया। निम्बो ने अब की पुनः उसके हाथों को झटककर परे कर दिया।

तेजनारायण एक क्षण के लिए तो बिलकुल हताश हो गया। परन्तु उसके बाद वह सम्भल गया। निम्बो से कुछ दूर ही खड़े रहकर उसने बड़े स्नेह के साथ कहा, 'निम्बो, मुझसे इतना डरती क्यों हो ?'

निम्बो ने कोई जवाब नहीं दिया।

तेजनारायण ने फिर से कहा, 'मैं कोई बाघ तो नहीं, जो तुम्हें खा जाऊंगा।'

चुप्पी।

'निम्बो !'

कोई जवाब नहीं।

'निम्बो, कम से कम बैठ तो जाओ। इस तरह खड़े रहने से क्या लाभ ?'

निम्बो उसी तरह खड़ी रही, जैसे वह पत्थर की प्रतिमा हो—कुछ ही न रही हो।

'मेरी प्यारी !'

चुप्पी।

'मालूम होता है, यह घर तुम्हें पसन्द नहीं आया।'

चुप्पी ही।

'इस तरह कब तक खड़ी रहोगी ?'

कोई जवाब नहीं।

तेजनारायण ज़रा आगे बढ़ा, और डरते-डरते उसने निम्बो को इस नीयत से छुआ कि वह उसे पकड़कर पलंग पर बैठा दे। निम्बो ने तेजनारायण के इस कार्य में विरोध नहीं किया। वह धीरे-धीरे पलंग के एक किनारे पर बैठ गई, और अपना मुंह उसने कपड़े से ढांक लिया।

पत्नी के आचरण में यह परिवर्तन देखकर तेजनारायण की हिम्मत बढ़ी और धीरे-धीरे वह भी सामने के पलंग पर जाकर बैठ गया।

तेजनारायण ने अब के पूछा—'निम्बो, कुछ पढ़ी भी हो ?'

चुप्पी ।

'इतनी शर्म किससे कर रही हो ?'

फिर चुप्पी ।

'नींद आ रही है क्या ?'

कोई जवाब नहीं ।

निम्बो अपना मुंह दोनों हाथों में पकड़कर बैठी थी । तेजनारायण धीरे-धीरे उसकी तरफ बढ़ा । निम्बो को उसकी गति का ज्ञान तक न हुआ । वह उसी तरह बैठी रही । तेजनारायण समझा कि बस अब वह गड़बड़ न करेगी । हिम्मत करके वह निम्बो के बिलकुल निकट जा बैठा और शीघ्रता से अपनी बांह उसने निम्बो के गले में डाल दी ।

निम्बो बिजली की तरह तड़पकर उठ खड़ी हुई । एक ही छलांग में तेज-नारायण से दो-तीन गज़ दूर हटकर उसने अपने मुंह पर से आवरण हटा दिया और गुस्से से कांपती हुई आवाज में सिर्फ इतना ही कहा, 'मैं कहती हूं, दूर हट जाओ ?'

तेजनारायण कांप गया । उसे प्रतीत हुआ, मानो निम्बो की आंखों से आग की लपट निकलना चाहती है ।

दो-एक मिनट तक कमरे में पूरी तरह से सन्नाटा रहा । इसके बाद तेज-नारायण ने आवाज दी, 'काकी ! ओ काकी !'

बाहर से आवाज आई, 'जी !'

'जरा दरवाज़ा खोल देना ।'

काकी ने बाहर से दरवाज़ा खोल दिया । दरवाज़ा खुलते ही निम्बो वहा से इस तरह भागी, जैसे पिंजरे में फंसी हुई जंगली चिड़िया मौका पाते ही आस-मान में उड़ जाए ।

अगले दिन के प्रातःकाल, अवसर देखकर, निम्बो ने ससुराल से शामपुर की ओर भागने का प्रयत्न भी किया । मगर थोड़ी दूर पर वह पकड़ ली गई । यह दिन भी उसी तरह बीता । तीसरे दिन, हार मानकर निम्बो के ससुराल वालों ने उसे शामपुर भेज ही दिया ।

परन्तु आखिर अदम्य और उच्छृंखल स्वभाव की निम्बो को भी यह स्वीकार कर ही लेना पड़ा कि वह विवाहिता है। घर लौटकर, वहां अपने ही लोगों से वह जो पराया-सा व्यवहार पाने लगी, उसने उसे उद्विग्न तो किया, परन्तु उसने पराजय स्वीकार नहीं की। तथापि काल महान् की करनी से धीरे-धीरे स्वयमेव वह स्थिति आ गई, जब उसका अपना हृदय भी बार-बार चिल्लाकर कहने लगा कि वह तो 'विवाहिता' है।

निम्बो के विवाह को अब दो वर्ष बीत चुके थे। इस बीच में उसकी ससुराल वालों ने अनेक बार सन्देश भेजकर उसे बुलाने का प्रयत्न किया था, परन्तु अपने मां-बाप का घर छोड़कर कहीं और जाने को वह तैयार ही न हुई थी। आखिर हार मानकर उसकी ससुरालवाले चुप हो रहे थे।

परन्तु अब स्वयं निम्बो का अन्तरात्मा ही उसे दूसरी तरह की गवाही देने लगा। वह अब १७ वर्ष की आयु पार कर चुकी थी। गांव की खुली हवा, उत्तम भोजन और पढ़ाई-लिखाई-रहित निश्चिन्त जीवन ने शीघ्र ही निम्बो के अन्तस्तल में बिलकुल नए प्रकार की कोमल अनुभूतियों को जन्म देना शुरू किया। इन सबसे बढ़कर, निम्बो के इस ज्ञान ने कि 'वह विवाहिता है', धीरे-धीरे उसे सचमुच ही 'विवाहिता' बना दिया।

निम्बो के शरीर में लावण्य फूट पड़ा। उसका वक्षस्थल भर आया, मुंह पर तारुण्य का उजेला छा गया और आंखों पर लज्जा के सुनहले पर्दे-से पड़ गए। उसका हृदय स्वयं ही यह अनुभव करने लगा कि वह अकेली है, और अकेलापन अच्छा नहीं होता।

और इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हुई, जिसने निम्बो के जीवन का प्रवाह ही बदल दिया।

गर्मियों के एक दिन की बात है। निम्बो का जी कुछ अच्छा न था। कुछ तो गर्मी की वजह से और कुछ अपनी तबीयत खराब होने से निम्बो को रात भर नींद नहीं आई। सुबह हुई तो उसने अपने में बड़ी थकान और अशान्ति का अनुभव किया।

रात भर हवा बन्द रही थी। इस समय भी आसमान में धूल छाई हुई थी और ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे आज अंधड़-तूफान का दिन रहेगा। दिन की

गर्मी बढ़ने पर निम्बो को बड़ी प्यास-सी अनुभव हुई। बाग का माली उसके परिवार के लिए अनेक तरबूज छोड़ गया था। निम्बो ने एक तरबूज ले लिया और उसे काटकर वह खा-पी गई।

दस बजने तक उसका जी मचलाने लगा। वह अपने बिस्तरे पर जाकर लेट रही। परन्तु शीघ्र ही उसे कै आ गई। निम्बो की मां ने उसकी परिचर्या शुरू की, परन्तु आध घण्टे में हो उसे करीब १०-१२ बार उल्टी हुई। निम्बो को ऐसा अनुभव होता था, जैसे उसके पेट की सभी नस-नाड़ियां मुंह के मार्ग से बाहर निकल आएंगी।

निम्बो के मां-बाप घबरा गए। उन्हें शक हुआ कि निम्बो को हैज़ा हो गया है। इधर तो गांव के वैद्य को बुलाकर उन्होंने निम्बो की चिकित्सा शुरू कर दी और उधर उसकी ससुराल को यह खबर पहुंचाने के लिए आदमी भी अजीतपुर भेज दिया गया।

तेजनारायण के घर निम्बो की बीमारी का समाचार सांझ को पहुंचा। वहा रोना-धोना शुरू हो गया। तेजनारायण के मुंह पर मानो किसीने हल्दी फेर दी। परन्तु वह चिल्ला-चिल्लाकर रोया नहीं। वह उसी वक्त शामपुर जाने के लिए तैयार हो गया।

आज दिन भर अन्धड़ चलता रहा था और इस समय तो आंधी का वेग और भी अधिक बढ़ गया था। सूरज डूबने में अब अधिक देर नहीं थी, फिर भी सब लोग आज अपने घरों में बन्द होकर बैठे थे। सब ओर सन्नाटा था, केवल तेज़ अन्धड़ की सांय-सांय आवाज ऊपर-नीचे, दाएं-बाएं, इधर-उधर जैसे सभी ओर से आ रही थी। तेजनारायण ने जूते पहने और किसीसे कुछ भी कहे बिना वह ससुराल के लिए चल पड़ा।

रोना छोड़कर मां ने पुकारा, 'बेटा !'

मुंह उठाकर बाप ने आवाज़ दी, 'तेज !'

सिसकती हुई करुण-सी आवाज में बहन ने भी पुकारा, 'भैया !'

मगर तेजनारायण जैसे बहरा था; उसने किसीकी नहीं सुनी। आखिर लाचार होकर घर के अन्य दो-चार आदमी भी उसके पीछे-पीछे हो लिए।

गांव से दो मील की दूरी पर एक छोटी-सी नदी पड़ती थी। शामपुर जाने के लिए इसे पार करना आवश्यक था। इस भयंकर आंधी के समय नाव को

घाट पर बांधकर मांझी समीप के गांव में चले गए थे। तेजनारायण ने घाट पर पहुंचकर आवाज़ दी—'मांझी ओ मांझी।'

कहीं से कोई जवाब नहीं मिला। तेजनारायण के साथी निराश भाव से उसके मुंह की ओर देखने लगे। जैसे वे कहना चाहते हों, कि अब और किया ही क्या जा सकता है?

नदी का पाट बहुत चौड़ा नहीं था, परन्तु इस समय उसमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं, मालूम होता है दूर पहाड़ पर जमकर वर्षा हुई थी। आसमान का अंधेरा प्रतिक्षण बढ़ता चला जा रहा था और आंधी का वेग भी अभी तक कम नहीं हुआ था। ऐसे वक्त ये लोग लौट जाने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे? साथ वालों में तेजनारायण के छोटे मामा भी थे। तेजनारायण ने कांपती हुई आवाज़ में उनसे कहा, 'मामा जी, आप लौट जाइए। मैं अच्छा तैराक हूं। मैं तैरकर अकेला ही श्यामपुर जा पहुंचूंगा।'

मामा ने फटकारा, 'पागल हुआ है क्या? ठहर जरा, आंधी थम जाने दे, तब किसी आदमी को भेजकर मांझियों को बुला लेंगे, और रात ही रात श्यामपुर जा पहुंचेंगे। ऐसी घबराहट किस काम की!'

मगर तेजनारायण जानता था कि यह तूफ़ान शीघ्र थमने वाला नहीं है। आंधी के बाद पानी बरसने लगेगा, और तब नाव को दूसरी पार ले जाना बिलकुल ही असम्भव हो जाएगा।

पगड़ी और जूते उतारकर तेजनारायण अपने मामा की बात का जवाब तक दिए बिना नदी में प्रविष्ट हो गया। उसके साथी चिल्लाए। मामा ने व्याकुल स्वर में पुकारा, 'लौट आओ, पागल कहीं के! जान देने चले हो!'

मगर तेजनारायण जैसे सचमुच पागल हो गया था। देखते ही देखते वह नदी पर व्याप्त गहन अन्धकार में पहुंचकर अपने रिश्तेदारों की दृष्टि से ओझल हो गया। वे लोग हतबुद्धि-से होकर किनारे पर ही खड़े हुए नदी के अशान्त और भयंकर वक्षस्थल के गूढ़ अन्धकार में भेदती आंखों से देखने लगे। उन सभी का दिल धड़क रहा था। न जाने तेज का क्या होगा!

अधिक देर नहीं हुई थी कि नदी के दूसरे पार से आंधी की सांय-सांय और लहरों की सप-सप आवाज़ में छिपी हुई ऊंची आवाज़ की प्रतिध्वनि सुनाई

दी। कोई चिल्लाकर कह रहा था—'मामा जी, मैं पहुंच गया हूं। आप लौट जाइए।

तेजनारायण के रिश्तेदारों की जान में जान आई, और वे वापस लौट गए।

इसके दो घण्टा बाद, जिस समय तेजनारायण शामपुर पहुंचा, उस समय तक मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई थी और रात का घना अंधकार सब ओर व्याप्त हो चुका था। तेजनारायण हांफती हुई-सी दशा में अपनी ससुराल के द्वार तक पहुंचा।

निम्बो और उसके घर के लोग जिस कमरे में थे, उस कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द था। वर्षा पड़ने की गम्भीर और कर्कश आवाज के साथ-साथ सहसा उन्हें अपने घर के आंगन में किसीके हांफने की आवाज सुनाई दी। इसके अगले ही क्षण किसीने बाहर से दरवाजा खटखटाया। निम्बो की माता ने बड़ी घबराहट के साथ किवाड़ खोल दिए और उसी क्षण वर्षा की बूंदों के एक तेज झोंके के साथ-साथ मानो बरसात के देवता की तरह भीगे-भिगाए तेजनारायण ने कमरे में प्रवेश किया।

हरिकेन के मध्यम और कविता-हीन प्रकाश में तेजनारायण ने देखा कि घबराने की कोई बात नहीं है। निम्बो अपने बिस्तरे पर सिरहाने के सहारे बैठी है।

इसके साथ ही साथ निम्बो की निगाह भी अपने पति के चेहरे पर पड़ी। उसके भीगे बाल मिट्टी से भरे पड़े थे। नंगे पैर कीचड़ से सने हुए थे। तन के सम्पूर्ण कपड़ों का बुरा हाल हो गया था। उनसे खूब पानी चू रहा था। तेजनारायण की ओर देखकर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कि भग्न जहाज का टूटा-फूटा मस्तूल जीवित होकर चलने-फिरने लगा हो। निम्बो को युवक तेजनारायण का यह चिन्ताकुल और अस्त-व्यस्त रूप किसी देवता के समान मनोहारी जान पड़ा। उसके पीले चेहरे पर लालिमा की एक रेखा-सी दौड़ गई।

निम्बो की मां ने बताया कि चिन्ता की कोई बात नहीं है। असल में निम्बो को हैजा हुआ ही नहीं था।

दूसरे दिन जब तेजनारायण अपने गांव की ओर लौटने लगा, तो निम्बो ने

उसे इशारे से अलग बुलाकर कहा, 'मुझे भी अपने साथ लेते चलो !'

तेजनारायण के विस्मय और हर्ष का पारावार न रहा। निम्बो के सौंदर्य की ओर दो-एक क्षणों तक बेवकूफों की तरह ताकते रहने के बाद उसने कहा—'तुम अभी तो कमजोर हो। न हो, कुछ दिन ठहरकर चली आना।'

निम्बो ने अधिकारपूर्वक कहा, 'नहीं, कुछ दिन तो क्या, एक पहर भी नहीं। देखो तो, तुम्हारा चेहरा सूख गया है, आंखें भीतर धंस गई हैं। मैं जानती हूं कि यह सब मेरे ही कारण हुआ है। मैं इसी समय तुम्हारे साथ चलूंगी।'

नतीजा यह हुआ, कि उसी सांझ जब तेजनारायण अपने घर पहुंचा, तो वह भी उसके साथ ही थी। इतनी शर्मीली—जैसे आज ही उसका ब्याह हुआ हो।

निम्बो अब एक पक्की गृहस्थिन बन गई, परन्तु उसके स्वभाव की तेजी अब भी उसी तरह कायम थी। वह अपने पति पर शासन करती थी। निम्बो की एक-एक क्रिया में तेजनारायण के प्रति अगाध स्नेह का भाव भरा रहता था, उसकी जबान से कभी कोई क्रोधभरी बात भी नहीं निकलती थी। मगर फिर भी उसके बोलने के ढंग में कुछ ऐसी तेजी-सी थी, जो तेजनारायण जैसे नवयुवक को उसके अधीन रखने के लिए काफी थी। जिस निम्बो को पहले 'मर्द' की कल्पना से भी चिढ़ थी, उसी निम्बो के लिए तेजनारायण नाम के आज्ञापालक और विनीत मर्द के बिना एक क्षण काटना भी असम्भव बन गया था। तेजनारायण उसीका है; केवल उसीका—और किसीका भी नहीं।

सुबह से लेकर रात तक तेजनारायण को निम्बो की हुकूमत में रहना पड़ता था। यदि वह कुछ कम खाता तो उसे निम्बो की फटकार सुननी पड़ती थी। यदि कभी जल्दी में वह अधूरे कपड़े पहनकर बाहर जाने लगता तो उस पर डांट पड़ती, और निम्बो उसे साफ-सुथरे कपड़े पहनाकर ही बाहर जाने देती। यदि वह रात को देर तक काम करना चाहता, तो इसपर भी उसे निम्बो की फटकार सुननी पड़ती। जैसे तेजनारायण एक नासमझ बालक हो, और निम्बो उसकी परिचारिका। आध्यात्मिक शब्दों में कहें तो निम्बो आत्मा थी, और तेजनारायण उसका शरीर। आत्मा अपने शरीर को पूर्णरूप से अपने ही

अनुशासन में रखना चाहती थी। जैसे निम्बो एक छोटी-सी बालिका हो, और तेजनारायण उनकी प्यारी गुड़िया।

एक दिन की बात है, किसी घरेलू काम से तेजनारायण को अलाहाबाद भेजने का निश्चय हुआ। परन्तु निम्बो को जब यह समाचार मिला, तो मानो उसे आग लग गई। न जाने क्यों, अलाहाबाद से उसे खास तरह की चिढ़-सी थी। उसने तेजनारायण को शासन के तौर पर कहा, 'देखो, तुम अलाहाबाद किसी भी दशा में नहीं जाने पाओगे।'

तेजनारायण खिलखिलाकर हंस पड़ा। उसने पूछा, 'वह क्यों ?'

निम्बो को जैसे सचमुच गुस्सा आ गया। उसने कहा, 'तुम यह पूछने वाले होते ही कौन हो ? बस, मैंने कह जो दिया। तुम हर्गिज अलाहाबाद नहीं जाने पाओगे !'

'आखिर कोई बात भी हो ?'

'मेरी मर्ज़ी।'

'मगर दादा का हुक्म जो है !'

तेजनारायण को मालूम था कि निम्बो अपने ससुर की बड़ी इज्ज़त करती है। इसलिए उसे उम्मीद थी कि दादा का नाम सुनकर वह चुप हो जाएगी। मगर निम्बो अब भी अपनी जिद पर अड़ी रही। उसने कहा, 'मैं उनसे कह दूंगी। तुम्हें अलाहाबाद में किसी भी दशा में न जाने दूंगी।'

तेजनारायण ने हंसकर कहा, 'दादा से कहकर तो देखो !'

उसे ज्ञात था कि वह उनके सामने कभी नहीं बोलती। निम्बो जैसे चिढ़-सी गई। उसने कहा, 'दादा को गरज़ हो तो खुद चले जाएं। मैं तुम्हें वहां नहीं भेज सकती।'

तेजनारायण ने कहा, 'आखिर कोई बात भी हो !'

'बस, मेरी मर्ज़ी।'

मगर काम ज़रूरी था, इसलिए अगले दिन तेजनारायण अलाहाबाद जाने को तैयार हो ही गया।

निम्बो ने देखा कि और किसी तरह से बात बनती नहीं, तो हिम्मत करके वह अपने ससुर के सम्मुख पहुंची, और धीरे से बोली, 'इनसे कह दीजिए कि वह अलाहाबाद न जाएं।'

ससुर ने पूछा, 'क्यों बेटी वह क्यों अलाहाबाद न जाएं ?'

न चाहते हुए भी निम्बो के मुंह से निकल ही गया, 'इतने बड़े शहर में उन्हें कहीं चोट-वोट लग जाए तो ?'

बूढ़ा बाप बड़े ही स्नेह के साथ खिलखिलाकर हंस पड़ा ! उसने कहा, 'अलाहाबाद में और भी तो हजारों आदमी रोज आते-जाते हैं बेटी !'

निम्बो से इस बात का कोई जवाब नहीं बन पड़ा तो वह रुआंसी-सी होकर वहां से भाग खड़ी हुई । चलते वक्त वह तेजनारायण से मिली भी नहीं ।

तेजनारायण अलाहाबाद चला तो गया, मगर उसके पीछे घर में एक भयंकर समस्या उठ खड़ी हुई । बहू ने न कुछ खाया, और न पीया । सास ने हजारों तरह से कोशिशें की । ननद ने सैकड़ों तरह से मनाया । मगर निम्बो तो आखिर निम्बो ही थी । बचपन की हठीली । वह नहीं मानी । दो दिन बीत गए, और निम्बो ने अपना सत्याग्रह नहीं तोड़ा । आखिर पास के कस्बे के तार-घर से तार द्वारा तेजनारायण को शीघ्र लौट आने का सन्देश भेजना ही पड़ा ।

तेजनारायण जब घर लौट आया, तब बहू ने अपना अनशन व्रत तो तोड़ दिया, परन्तु उसकी ज़िद अब भी नहीं टूटी । तेजनारायण की ऐसी हिम्मत कि वह निम्बो की बात न माने ! बात न मानने वाला वह होता ही कौन है ! निम्बो पूरे एक सप्ताह तक तेजनारायण से एक शब्द भी नहीं बोली, और उसके बाद, आठवें दिन की सुबह आप ही आप अपने प्रियतम के पास जाकर निम्बो ने कहा, 'अच्छा, सल्का अब के तुम्हें माफ़ कर देती है !'

इसी तरह निम्बो और तेजनारायण के सुखी जीवन के पांच बरस पांच मिनटों के एक मधुर स्वप्न के समान बीत गए, और इस बीच में निम्बो एक पुत्र की माता भी बन गई ।

उस दिन के बाद तेजनारायण फिर कभी अलाहाबाद नहीं गया । वह लखनऊ हो आया, कानपुर हो आया और बनारस का भी चक्कर लगा आया, परन्तु निम्बो ने उसे अलाहाबाद नहीं जाने दिया । न जाने क्यों अलाहाबाद से वह बहुत अधिक डरती थी ।

निम्बो की तो शायद यह ज़िद ही थी । बिलकुल बच्चों जैसी ही । मगर अन्त में, साबित हुआ, यह विधाता का एक अत्यन्त विचित्र विधान ही ।

हाईकोर्ट में एक आवश्यक अपील के लिए तेजनारायण को अलाहाबाद भेजना जरूरी था। अतः उसके बाप ने बहू से यह बहाना कर, कि तेज को लखनऊ भेजा जा रहा है, उसे अलाहाबाद भेज दिया।

मगर शीघ्र ही निम्बो को असली भेद मालूम हो गया। अलाहाबाद से तेजनारायण ने अपने पिता के नाम पर जो पत्र भेजा था, उससे निम्बो को मालूम हो गया कि हज़रत अलाहाबाद तशरीफ़ ले गए हैं। निम्बो के क्रोध और अभिमान का पारावार न रहा। ओह, मुझसे ये चालें! आएं तो सही, मैं उन्हें किस तरह आड़े हाथों लेती हूं। अब के एक महीने तक उनसे बात भी की, तो जो चाहे कह लेना।

निम्बो से रहा नहीं गया। टूटी-फूटी भाषा में उसने तेजनारायण के नाम एक गरम चिट्ठी लिखी। मगर जब वह उसे पोस्ट करने लगी, तो उसे खयाल आया कि उसके पास तो टिकट ही नहीं है। तब यह चिट्ठी उसने अपने बक्स में बन्द करके रख दी। उसने सोचा, कल सुबह दादा से लिफाफा लेकर इसे डाकखाने में भिजवा दूंगी।

निम्बो का असहयोग फिर से जारी हो गया। अब की उसने खाना-पीना तो नहीं छोड़ा, परन्तु सबसे बातचीत करना छोड़ दिया। वह सबको बता देना चाहती थी कि उससे इस तरह की चालें नहीं चल सकतीं।

रात हुई तो निम्बो की उदासी बढ़ने लगी। न जाने क्यों, उसका दिल बैठा-सा जाता था। रात भर वह उनींदी-सी रही। बीच-बीच में सैकड़ों तरह के भयंकर सपने देखकर वह चौंक पड़ती थी।

अगले दिन की सुबह निम्बो अपनी कल की चिट्ठी पोस्ट करने का प्रबंध कर ही रही थी, कि दूर ही से उसे अपने दादा के रोने-पीटने की आवाज़ सुनाई दी।

इसके कुछ ही क्षणों के बाद सारा गांव तेजनारायण के मकान पर जमा हो गया। गांव भर में रोना-धोना मच गया। अभी-अभी अलाहाबाद से ज़रूरी तार आया था कि पिछली सांझ को अचानक एक मोटर के नीचे आकर तेज-नारायण का देहान्त हो गया है और उसकी लाश का पोस्टमार्टम किया जाने वाला है।

ओह, मनुष्य के जीवन की यह सबसे बड़ी घटना कभी-कभी कितना अचानक हो जाती है !

निम्बो ! निम्बो !! अभागिनी निम्बो !!!

उपर्युक्त घटना को आज १७ बरस बीत चुके हैं। अजीतपुर का नक्शा ही बदल गया है। निम्बो को छोड़कर उसके घर में कोई भी बाकी नहीं रहा। निम्बो का लड़का भी अपने फूफा के घर लखनऊ में रहता है। अकेली निम्बो ही वहां रहती है। अजीतपुर के उस बड़े-से मकान में विधवा के रूप में अकेले रहते हुए भी निम्बो आज तक अपने को 'विधवा' नहीं मानती।

गांव के पढ़े-लिखे लोग कहते हैं कि वह पगली है। मगर व्यवहार में उसे पगली कोई नहीं मानता। अजीतपुर ही क्या, आसपास के बीसों गांवों में वह 'सती' के नाम से प्रसिद्ध है। सधवा स्त्रियां और बच्चों वाली माताएं पगली निम्बो से अपने तथा बच्चों की दीर्घायु के लिए आशीर्वाद मांगा करती हैं और वह मुक्त हस्त होकर अपना वह वरद आशीर्वाद बांटती है।

अपनी खुशकिस्मती से एक बार मैं भी अचानक अजीतपुर जा पहुंचा था। इस 'जिन्दा सती' के दर्शन कर, मेरा जन्म सफल हो गया। ओह, कितना दुष्कर है इस तरह जिन्दा रहते हुए सती हो जाना ! सचमुच कोई निम्बो-सा पागल ही ऐसा कर सकता है।

निम्बो के घर पहुंचकर मैंने देखा, अब वह एक कमजोर-सी बुढ़िया के समान दिखाई देती है। मुंह पर झुर्रियां, आंखें गढ़ों में धंसी हुईं और सिर के अधिकांश बाल सफेद। तो भी उसकी आंखों में एक विशेष प्रकार की उजली चमक है, और उसके चेहरे पर पवित्रता की स्वर्गीय आभा।

मैंने देखा—निम्बो रसोईघर में चूल्हे के पास बैठी है। उसके निकट ही एक चौकी पड़ी है जिसपर आसन बिछा है। और चौकी के सामने एक अधिक ऊंची चौकी पर परोसा हुआ थाल रखा है। मेरी मानवीय स्थूल आंखों की दृष्टि में वह चौकी खाली थी। मगर सती निम्बो को तो उस आसन पर अपना देवता बैठा हुआ दिखाई देता है। नहीं, देवता नहीं; हठी निम्बो का वही आज्ञाकारी तेजनारायण। तभी तो आज भी निम्बो अपने उस देवता को फटकार

रही है, 'तुमने अभी कुछ नहीं खाया प्यारे ! अभी तुम्हें और खाना पड़ेगा। क्या कहते हो, भूख नहीं ? नहीं; मेरी कसम, एक छोटा-सा फुलका और ले लो !''''देखो, तुम कितनी मेहनत करते हो। खाओगे नहीं तो काम कैसे बनेगा ?'' नहीं खाओगे ? चलो, हटो, मैं भी आज भूखी ही सो रहूंगी।''''हाय, तुम बड़े ही अच्छे !''''आखिर मानना ही पड़ा न ! ह:-ह:-ह: !!'

मैंने देखा कि निम्बो खूब खिलखिलाकर हंस पड़ी, और इसके साथ ही उसने खूब घी से भरा एक ताजा फुलका उस थाली में और छोड़ दिया।

इसके बाद निम्बो ने कुछ रूखा-सूखा और थोड़ा-सा आहार किया और तब वह रसोईघर से बाहर आ गई।

निम्बो अब अपने सोने के कमरे में गई। मैंने बाहर से देखा—एक बढ़िया पलंग पर सफेद बिस्तर बिछा हुआ था। उसके पास ही एक तिपाई रखी हुई थी, और उसके ऊपर रेशमी आवरण बिछा हुआ था। इस तिपाई पर चांदी की एक तश्तरी पड़ी हुई थी।

निम्बो इस पलंग के निकट पहुंची। उसके हाथ में चांदी के वरक से मढ़ा पान का एक बीड़ा था। निम्बो ने उस खाली पलंग की ओर देखकर बड़े स्नेह के साथ कहा, 'लो, यह पान खा लो प्यारे !'

शायद निम्बो को ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उसका आग्रह स्वीकार नहीं हुआ। उसने कुछ रुआसी-सी होकर कहा, 'ऊंह, तुम बड़े खराब हो; मेरी बात कभी नहीं मानते !'

इतना कहकर बड़े नाजो-नखरे के साथ निम्बो ने अपना मुंह जरा-सा मोड़ा ही था कि उसकी भाव-भंगिमा बदल गई। वह मुस्करा पड़ी—'हां, अब माने कि नहीं ! शरीफ आदमी का यही काम होता है। ओह, तुम कितने अच्छे हो !'

निम्बो ने वह पान चांदी की तश्तरी में रख दिया, और स्वयं फर्श ही पर एक पुरानी-सी दरी बिछाकर, उसीपर लेट गई।

मेरी आंखों में आंसू भर आए थे, इससे मैं और कुछ भी नहीं देख पाया। आंखों पर रूमाल रखकर वहां से चला आया। अजीतपुर निवासी निम्बो के सम्बन्ध में इसी तरह की और भी बहुत-सी बातें सुनाते हैं। निम्बो विधवा है, अकेली है। परन्तु पिछले १७ बरसों में उसने एक क्षण के लिए भी अपने को

कभी अकेला अनुभव नहीं किया। वह हर समय उठते-बैठते, सोते-जागते, खाने-पीते अपने प्रियतम को अपने समीप ही देखती है। वह अब भी मान करती है, ज़िद करती है, डांटती है और प्यार भी करती है। सत्रह लम्बे-लम्बे साल उसने इसी तरह निकाल दिए हैं। परमात्मा ने उसे अकेला बना दिया था, परन्तु परमात्मा के अटल विधान के सम्मुख भी उसने सिर नहीं झुकाया। प्रकृति के सम्मुख भी उसने पराजय स्वीकार नहीं की।

क, ख, ग

क. हत्या

सांझ का झुटपुटा समय था। पंजाब के पश्चिमोत्तर भाग के उजाड़ इलाके में एक मालगाड़ी धुआं उड़ाती हुई चली जा रही थी। दिन भर पूरी प्रचण्डता से तपकर सूर्य अस्त होने लगा था। हवा बिल्कुल बन्द थी, मानो आसमान का दम घुट रहा हो। वायुमण्डल में धूल इस तरह छाई हुई थी, जैसे किसी हिन्दू जोगी ने अपने गोरे शरीर पर भस्म रमा रखी हो। ड्राइवर और गार्ड दोनों अपनी-अपनी जगह बैठे ऊंघ रहे थे। यह लाइन बहुत चलती हुई नहीं है। दिन भर में भूली-भटकी सिर्फ दो-चार गाड़ियां खट-खट करती हुई इधर से उधर निकल जाती हैं। इस कारण न गार्ड को चिन्ता थी और न ड्राइवर को परेशानी। केवल इंजिन के पेट मे कोयला झोंकने वाला नौजवान कुली इस समय भी इंजिन के बाहर की पटरी पर, रेलिंग के सहारे खड़ा होकर, बेढंगी कसरत कर रहा था। शायद वहां उसे कुछ हवा मालूम हो रही हो।

रेलिंग के सहारे इधर-उधर झूलता हुआ कुली अचानक चिल्ला उठा, 'डिराइवर, डिराइवर ! गाड़ी रोको। लाइन पर कोई लेटा हुआ है।'

ड्राइवर साहब चौंककर खड़े हो गए। उन्होंने इंजिन की शीशे वाली बड़ी-बड़ी आंखों से सामने की ओर देखा—सचमुच कोई शख्स एक मैली चादर ओढ़े हुए बिल्कुल बेफिक्र होकर ठीक पटरी पर लेटा हुआ है। वह सीटियां देता हुआ बड़बड़ाया, 'इस कम्बख्त को सोने के लिए यही जगह मिली थी।'

परन्तु पटरी पर लेटा हुआ आदमी हिला तक नहीं। ड्राइवर झुंझलाकर बोला, 'कुचल जाने दो साले को।' मगर साथ ही साथ उसके कुशल हाथों ने गाड़ी को रोकने के लिए ब्रेक भी खुद-ब-खुद कस दिया। गाड़ी की चाल एक-दम धीमी पड़ गई। कुली ज़ोर-ज़ोर से हंसकर बोला, 'बच्चुआ लाइन पर ऐसे

मजे में सो रहे हैं, जैसे ससुराल में पलंग पर पड़े हों। लोहे का वह विशाल-काय चलता-फिरता राक्षस इस समय भी तीक्ष्ण स्वर में एक पर एक ललकार दे रहा था। परन्तु आश्चर्य यह कि पटरी पर सोया हुआ आदमी अब भी उठा नहीं।

गाड़ी उस सोए हुए आदमी के अत्यन्त निकट आकर रुक गई, मगर चादर में कोई गति दिखाई नहीं दी। ड्राइवर अक्लमन्द था। वह समझ गया कि दाल में कुछ काला है। इस समय तक गार्ड भी इंजिन के निकट आ गया था। दोनों ने एक साथ उस ढेर के निकट जाकर देखा—चादर पर जगह-जगह लाल दाग थे। उनपर मक्खियां भिनभिना रही थीं। गार्ड को मामला समझने में देर न लगी, परन्तु कुली इतना तीव्रबुद्धि न था, वह कौतूहल के मारे पागल हो रहा था। उसने चादर खींचकर अलग कर दी। देखा, उसके नीचे दस-ग्यारह बरस के एक सुन्दर बालक की लाश पड़ी हुई है।

मामला एकदम संगीन था। गाड़ी उस लाश को लेकर आगे बढ़ी। अगला स्टेशन बहुत दूर नहीं था।

उस स्टेशन का नाम मुझे स्मरण तो है, परन्तु वह इतना बेढंगा है कि उसे छिपाए रखना ही अधिक उपयुक्त है। स्टेशन के आसपास कोई विशेष आबादी नहीं है। स्टेशन इतना नगण्य है कि उसके सिगनल के दोनों हाथ हर समय एक ही साथ नीचे की तरफ झुके रहते हैं। गार्ड ने अपने डिब्बे में से झांककर देखा कि उस उजाड़ और सुनसान स्टेशन पर पांच-सात आदमियों की एक टोली जमा है। इस छोटे-से स्टेशन पर सांझ के समय पांच-सात आदमियों का जमा होना भी एक आश्चर्यजनक घटना थी। गाड़ी प्लेटफार्म पर पहुंच गई, परन्तु वह टोली अपने ही काम में व्यस्त रही। गार्ड ने गाड़ी से उतरकर देखा कि इस स्टेशन से तीन मील की दूरी पर जो कस्बा है, उसका सरकारी डाक्टर एक बीस-बाईस बरस के नौजवान हिन्दू को पकड़े हुए खड़ा है। वह नौजवान बहुत घबराया हुआ प्रतीत हो रहा था।

सिक्ख गार्ड ने नजदीक आकर स्टेशन मास्टर से पूछा, 'क्या मामला है?'

स्टेशन मास्टर ने कहा, 'थोड़ी देर हुई डाक्टर साहब अपने दो-चार दोस्तों के साथ सैर के लिए जा रहे थे। राह में उन्हें यह नौजवान अकेला आता हुआ मिला। डाक्टर साहब को देखकर यह चौंका। इसके कपड़ों पर खून के दाग

थे, अतः डाक्टर को इसपर सन्देह हो गया, और वह इसे अपने साथ पकड़ लाए।'

गार्ड ने कहा, 'मेरा मामला तो और भी संगीन है। हमें लाइन पर एक लाश मिली है।'

इसी समय इंजन का कुली गाड़ी में से वह नन्ही-सी लाश उठाकर प्लेटफार्म पर ले आया। इस लाश को देखते ही वह नौजवान जिसे डाक्टर साहब ने पकड़ रखा था, भय से चीख उठा। लोगों ने पहचाना—वह नौजवान और यह मरा हुआ बालक दोनों एक ही घर में रहने वाले दूर के भाई थे। मामला संगीन होने के साथ ही साथ पेचीदा भी हो गया।

डाक्टर साहब थे तो गांव के डाक्टर, मगर समझदार काफी थे। उन्हें पहले ही से यह सन्देह था कि यह नौजवान कोई असाधारण काम करके आ रहा है। अब यह लाश देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि इस बालक की हत्या इसी व्यक्ति ने की है, परन्तु ये दोनों तो चचेरे भाई हैं, फिर बड़ा भाई छोटे भाई की हत्या क्यों करेगा? तथापि इस समस्या पर अधिक गहरा विचार न कर डाक्टर साहब ने उस नौजवान को डांटकर कहा, 'सच बता! तूने इस बच्चे का खून किसलिए किया है?'

वह कमज़ोर दिल का नौजवान डर से कांपने लगा। उससे कोई जवाब न दिया गया।

लाइन के कांटे बदलने वाला स्टेशन का बूढ़ा पोर्टर बड़ा रहमदिल था, उसे इस जवान पर दया आ रही थी। उसने कहा, 'हुज़ूर, यह भी तो नामुमकिन नहीं कि किसी दूसरे आदमी ने इन दोनों भाइयों को एक साथ मारने की कोशिश की हो, परन्तु जवान होने के कारण यह तो भाग आया हो, वह बच्चा भाग न सका हो।'

डाक्टर ने डांटकर कहा, 'चुप रहो। तुमसे कौन पूछता है? क्या इस आदमी की अपनी ज़बान नहीं है?'

बूढ़ा पोर्टर चुप हो रहा।

अब ड्राइवर की अक्ल काम आई। उसने कहा, 'इस बूढ़े की बात भी नामुनासिब नहीं है। इस जवान के कपड़ों पर भी खून के दाग है। सम्भव है कि किसीने इसे भी पीटा हो। अब देखना यह चाहिए कि इसके शरीर पर

भी कोई चोट का निशान है या नहीं ।'

यह बात सब लोगों को ठीक जंची। डाक्टर साहब तो मौजूद थे ही. जवान का जिस्म बड़ी होशियारी के साथ टटोला गया, परन्तु उसके शरीर पर चोट का एक भी चिन्ह नहीं था । आश्चर्य तो यह कि उसके ऊपर वाले कपड़ों पर तो खून के दाग थे, परन्तु भीतर के कपड़ो पर किसी प्रकार का कोई निशान नही था । लोगों को अब यह विश्वास हो गया कि बालक की हत्या में इस बड़े भाई का भी हाथ अवश्य है ।

अब सिक्ख गार्ड की ताकत काम आई। उसने आव देखा, न ताव, झट से उस कमज़ोर-से जवान का गला दोनों हाथों में पकड़ लिया और कहा, 'सच बता, तूने इस बच्चे को क्यों मारा है ! नही तो, याद रख, तेरा गला भी अभी घोट देता हूं ।'

वह नौजवान चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा । गार्ड ने देखा, यह आदमी जवाब नहीं देता, उसने उसका गला थोड़ा-सा दबा दिया। जवान ने चीख मारकर कहा, 'गला छोड़िए। मैं अभी बताता हूं ।'

गार्ड ने उसका गला ढीला तो कर दिया, मगर अपने फौलादी पंजों को वहा से उठाया नहीं । खूनी बिलकुल कच्चा और कमजोर हृदय का था, इसलिए उसने यह बहुत शीघ्र स्वीकार कर लिया कि हत्या मैंने ही की है ।

इंजिन का मुसलमान कुली हैरत में आकर बोला, 'लाहौल बिला कूवत !'

गार्ड, डाक्टर और स्टेशन मास्टर इन तीनों थोड़ी-बहुत अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्तियों ने जिरह करके इस आदमी से जो बयान लिया, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

'हम दोनों चचेरे भाई हैं । इस बालक के पिता का देहान्त हो चुका है, माता जीवित है, भाई या बहन कोई नही। इसके पास ७० बीघा ज़मीन है । मैं बड़ा गरीब हूं। आजीविका का कोई साधन मेरे पास नहीं । किसीने सुझाया था कि यदि यह बालक मर जाए, तो इसकी जायदाद पर तुम्हारा हक हो जाएगा । यह बात मुझे जंच गई । आज दोपहर को मैंने इससे कहा कि आओ, अपनी जमीन पर खरबूजे खाने के लिए चलें । यह बड़ी खुशी से तैयार हो गया। रेलवे लाइन के नजदीक वाले जंगल में पेशाब के बहाने मैं जरा पीछे रह गया, और अपना चाकू निकालकर इसके गले पर वार किया। यह

चिल्लाया, मगर मैंने दो-तीन वार और करके इसे खत्म कर दिया। लाइन नजदीक थी। मैंने इसे लाइन पर इस गरज से रख दिया कि रात की मालगाडी से यह लाश कट जाएगी, तब लोग यही समझेंगे कि रेल के नीचे आकर ही इस बच्चे की मौत हुई है।'

इंजिन का कुली ऊंचे स्वर में चिल्ला उठा, 'खुदा है।'

ड्राइवर ने पूछा, 'क्यों ?'

कुली ने कहा, 'रोज़ की तरह अगर आज भी हमारी गाड़ी रात को ही आती, तो यह मामला खुलता ही नहीं। खुदा की मरजी थी कि मुझे यह लाश पहले ही से दिखाई पड़ गई।'

इसी समय सिक्ख गार्ड ने सीटी देकर कहा, 'चलो, हम किसी और लाश की तलाश में चलें। इस लाइन पर लाशें इस अधिकता से मिलती है, जिस तरह हिन्दोस्तान में भिखारी।'

ख. शहादत

इस बीसवीं सदी में अब तक भी दुनिया में अनेक ऐसे अन्धेरे कोने बाकी है, जहां मनुष्यों की आबादी तो है, मगर नये युग का प्रकाश नहीं पहुंच पाया है। इन स्थानों पर अभी तक तैमूरलंग के ज़माने की सदी ही विद्यमान है। यहा न रेल है, न डाक और न तार। लोग उसी तरह मिट्टी की दीवारों पर छप्पर डालकर रहते हैं। उनकी सम्पत्ति भी बिलकुल पाषाणयुग की है, अर्थात् कुछ भैंसें, गौएं, बैल और कुछ कमजोर घोड़े। पंजाब के पश्चिमोत्तर भाग के एक ऐसे ही अंधेरे कोने में रमजान का घर है। रमजान नौजवान है। दिल का साफ, जिस्म से तन्दुरुस्त और मिजाज़ का खुश। उसका घर एक ऐसी ही छोटी-सी बस्ती में होते हुए भी वह स्वयं वर्तमान सभ्यता की पहुंच से बाहर नहीं है। वह रेल पर सवार होकर लायलपुर तक का चक्कर लगा आया है। लायलपुर रहते हुए दो-एक दफा डाकखाने में जाकर उसने पोस्टकार्ड भी खरीदे हैं। पोस्टेज की इन्तजार में खिड़की के किनारे खड़े रहकर उसने यह भी देखा है कि डाकखाने के मुन्शी किस प्रकार खट-खट करके तार देते हैं। वह पूरे छः महीने तक लायलपुर में मजदूरी करता रहा है। आज वह चांदी के ७० चमकते हुए रुपए अपनी धोती के पल्ले में बांधकर घर लौट रहा है।

मुद्दत के बाद घर लौटते हुए आदमी को जो प्रसन्नता अनुभव होती है, वह शायद सबसे अधिक पवित्र, मीठी और गहरी प्रसन्नता है। नौजवान रमज़ान गांव की पगडण्डी पर चलते हुए इसी खुशी मे मस्त होकर ढोला का गीत गा रहा था। उस उजाड़ इलाके में यह पगडण्डी सांप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी होकर और मिट्टी के टीलों के कारण लहरों की तरह ऊंची-नीची होकर बिछी हुई है। दोनों ओर कीकर, सरकण्डा और करीर के झाड़-झखाड़ हैं। रात का समय था। दूर पर सैकड़ो गीदड़ एक साथ चिल्ला रहे थे। पास की नहर का बाध तोडकर कही-कही पानी इस पगडण्डी के नजदीक के गढ़ों में आकर भर गया था। इन गढ़ों में मेढक टर्रा रहे थे। पगडण्डी पर मच्छरों की फौजें बैण्ड बजा रही थी। इस गीदड़ों की चिल्लाहट, मेढकों की टरटराहट और मच्छरों की भिनभिनाहट में रमज़ान की ऊंची तान एक विशेष समा बांध रही थी। रमज़ान आज खुश था; इतना कि उसकी खुशी का अन्दाज तक नही लगाया जा सकता। उसके हाथ मे एक मजबूत डण्डा था, और पीठ पर एक चादर के पल्ले में घर के बच्चों के लिए कुछ मिठाई और खिलौने बंधे हुए थे।

रमज़ान का गांव बहुत ही छोटा है। एक बड़े-से टीले की ओट मे वह आठ-दस कच्चे घरों की बस्ती बसी हुई है। इस टीले से उतरकर जब रमज़ान गांव के निकट पहुंचा, तब उसे अपने पीछे की एक झाड़ी में से सरसराहट की आवाज़ आई। रमज़ान को सन्देह हुआ कि कोई मेरा पीछा कर रहा। रमज़ान ने ज़ोर से कहा, 'होशियार !'

सब ओर पहले की तरह सन्नाटा छाया रहा। कहीं से कोई आवाज़ नही आई। दो-एक मिनट तक वहीं खड़ा रहकर रमज़ान आगे बढ़ा।

रमज़ान अपने घर पहुंचा। रात काफी बीत चुकी थी। सब लोग खा-पीकर सो गए थे। केवल उसका बूढ़ा बाप अब भी चारपाई पर बैठकर हुक्का गुड़-गुडा रहा था। बाहर से पुकार सुनकर बूढे ने दरवाज़ा खोला। अचानक अपने पुत्र को देखकर उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। रमज़ान के बच्चों को छोडकर और सब लोग जाग गए—उसकी मां, उसकी दो बहनें और उसकी पत्नी। घर में नए सिरे से जीवन का संचार हो गया। सब लोग खूब दिल खोलकर रमज़ान से मिले।

और-और बातों के बाद रमज़ान ने अपनी चादर का पल्ला खोला। अन्दर

चिल्लाया, मगर मैंने दो-तीन वार और करके इसे खत्म कर दिया। लाइन नज़दीक थी। मैने इसे लाइन पर इस गरज से रख दिया कि रात की मालगाड़ी से यह लाश कट जाएगी, तब लोग यही समझेंगे कि रेल के नीचे आकर ही इस बच्चे की मौत हुई है।'

इंजिन का कुली ऊंचे स्वर में चिल्ला उठा, 'खुदा है।'

ड्राइवर ने पूछा, 'क्यों ?'

कुली ने कहा, 'रोज़ की तरह अगर आज भी हमारी गाड़ी रात को ही आती, तो यह मामला खुलता ही नहीं। खुदा की मरजी थी कि मुझे यह लाश पहले ही से दिखाई पड़ गई।'

इसी समय सिक्ख गार्ड ने सीटी देकर कहा, 'चलो, हम किसी और लाश की तलाश में चलें। इस लाइन पर लाशें इस अधिकता से मिलती है, जिस तरह हिन्दोस्तान में भिखारी।'

ख. शहादत

इस बीसवीं सदी में अब तक भी दुनिया मे अनेक ऐसे अन्धेरे कोने बाकी है, जहां मनुष्यों की आबादी तो है, मगर नये युग का प्रकाश नहीं पहुंच पाया है। इन स्थानों पर अभी तक तैमूरलंग के ज़माने की सदी ही विद्यमान है। यहा न रेल है, न डाक और न तार। लोग उसी तरह मिट्टी की दीवारों पर छप्पर डालकर रहते हैं। उनकी सम्पत्ति भी बिलकुल पाषाणयुग की है, अर्थात् कुछ भैंसें, गौएं, बैल और कुछ कमज़ोर घोड़े। पंजाब के पश्चिमोत्तर भाग के एक ऐसे ही अंधेरे कोने में रमज़ान का घर है। रमज़ान नौजवान है। दिल का साफ, जिस्म से तन्दुरुस्त और मिजाज़ का खुश। उसका घर एक ऐसी ही छोटी-सी बस्ती में होते हुए भी वह स्वयं वर्तमान सभ्यता की पहुंच से बाहर नही है। वह रेल पर सवार होकर लायलपुर तक का चक्कर लगा आया है। लायलपुर रहते हुए दो-एक दफा डाकखाने में जाकर उसने पोस्टकार्ड भी खरीदे हैं। पोस्टेज की इन्तजार में खिड़की के किनारे खड़े रहकर उसने यह भी देखा है कि डाकखाने के मुन्शी किस प्रकार खट-खट करके तार देते हैं। वह पूरे छः महीने तक लायलपुर में मजदूरी करता रहा है। आज वह चांदी के ७० चमकते हुए रुपए अपनी धोती के पल्ले में बांधकर घर लौट रहा है।

मुद्दत के बाद घर लौटते हुए आदमी को जो प्रसन्नता अनुभव होती है, वह शायद सबसे अधिक पवित्र, मीठी और गहरी प्रसन्नता है। नौजवान रमज़ान गांव की पगडण्डी पर चलते हुए इसी खुशी मे मस्त होकर ढोला का गीत गा रहा था। उस उजाड़ इलाके में यह पगडण्डी सांप की तरह टेढी-मेढ़ी होकर और मिट्टी के टीलों के कारण लहरों की तरह ऊंची-नीची होकर बिछी हुई है। दोनों ओर कीकर, सरकण्डा और करीर के झाड़-झंखाड़ हैं। रात का समय था। दूर पर सैकडों गीदड़ एक साथ चिल्ला रहे थे। पास की नहर का बांध तोडकर कहीं-कही पानी इस पगडण्डी के नजदीक के गढ़ों में आकर भर गया था। इन गढ़ों में मेढक टर्रा रहे थे। पगडण्डी पर मच्छरों की फौजें बैण्ड बजा रही थी। इस गीदड़ों की चिल्लाहट, मेढकों की टरटराहट और मच्छरो की भिनभिनाहट में रमज़ान की ऊंची तान एक विशेष समा बांध रही थी। रमज़ान आज खुश था; इतना कि उसकी खुशी का अन्दाज तक नहीं लगाया जा सकता। उसके हाथ मे एक मजबूत डण्डा था, और पीठ पर एक चादर के पल्ले में घर के बच्चों के लिए कुछ मिठाई और खिलौने बंधे हुए थे।

रमज़ान का गांव बहुत ही छोटा है। एक बड़े-से टीले की ओट मे वह आठ-दस कच्चे घरों की बस्ती बसी हुई है। इस टीले से उतरकर जब रमज़ान गांव के निकट पहुंचा, तब उसे अपने पीछे की एक झाड़ी में से सरसराहट की आवाज़ आई। रमज़ान को सन्देह हुआ कि कोई मेरा पीछा कर रहा। रमज़ान ने ज़ोर से कहा, 'होशियार!'

सब ओर पहले की तरह सन्नाटा छाया रहा। कहीं से कोई आवाज नही आई। दो-एक मिनट तक वहीं खड़ा रहकर रमज़ान आगे बढ़ा।

रमज़ान अपने घर पहुंचा। रात काफी बीत चुकी थी। सब लोग खा-पीकर सो गए थे। केवल उसका बूढ़ा बाप अब भी चारपाई पर बैठकर हुक्का गुड-गुडा रहा था। बाहर से पुकार सुनकर बूढ़े ने दरवाजा खोला। अचानक अपने पुत्र को देखकर उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। रमज़ान के बच्चों को छोडकर और सब लोग जाग गए—उसकी मां, उसकी दो बहनें और उसकी पत्नी। घर में नए सिरे से जीवन का संचार हो गया। सब लोग खूब दिल खोलकर रमज़ान से मिले।

और-और बातों के बाद रमज़ान ने अपनी चादर का पल्ला खोला। अन्दर

से निकले, कुछ बूंदी के लड्डू, कुछ लकड़ी के खिलौने और दो-एक रबड़ की सस्ती गेंदें। रमज़ान ने अपनी पत्नी से पूछा, 'मुन्नू कहां है? उसके लिए यह खिलौना लाया हूं।'

मुन्नू रमजान के छोटे लड़के का प्यार का नाम था। रमजान को उससे असीम स्नेह था। मुन्नू अभी तक बेहोश-सा सोया हुआ था। पत्नी ने कहा, 'वह सोया हुआ है। कहो तो जगा दूं।'

रमज़ान ने कहा, 'नहीं, सोया है तो सोया रहने दो। सवेरे यह सामान उसे दे दूंगा।'

थोड़ी देर में सब लोग सो गए। रमज़ान ने अपने रुपये घर के अन्दर एक घड़े में रख दिए।

रात के तीसरे पहर रमज़ान का बूढ़ा बाप घर के अन्दर से कुछ आहट पाकर जाग उठा। अपना गला साफ करके उसने ज़ोर से कहा, 'कौन है?'

इसके अगले ही क्षण घर में से पांच-छः मिट्टी के घड़े एक साथ गिरने की ऊंची आवाज आई। रमजान जाग गया। घर की औरतें भी जाग गईं। अन्दर जाकर देखा तो मिट्टी की दीवार में एक बड़ी-सी सेंध लगी हुई है। घर का सामान चुराया तो नहीं जा सका, परन्तु वह सब अस्त-व्यस्त होकर बिखरा पड़ा है। रमज़ान भी सेंध में से होकर बाहर निकल आया। उसे दिखाई दिया कि दो-एक आदमी भागे चले जा रहे हैं। रमज़ान चिल्लाया 'चोर! चोर!' इसके साथ ही वह उनके पीछे दौड़ा। आसपास के सब लोग भी जाग गए थे, उन्होंने भी रमज़ान का अनुसरण किया।

दोनों चोर आगे-आगे थे, रमज़ान उनके पीछे, और अन्य ग्रामीण उसके पीछे। काली अंधेरी रात थी। उस उजाड़ प्रान्त की कांटेदार झाड़ियों को रौंदते हुए ये सब लोग भागे जा रहे थे। नाले के किनारे पहुंचकर आगे दौड़ने के लिए जगह न मिलने के कारण एक चोर रुका। इसी समय रमज़ान ने उसे मजबूती से पकड़ लिया। रमज़ान चिल्लाया, 'दौड़ो, दौड़ो, चोर पकड़ा गया!'

अन्य ग्रामीण अंधकार के कारण बहुत पिछड़ गए थे। अब रमज़ान की आवाज़ सुनकर वे भी उसी तरफ भागे।

इसी समय पहला चोर लौटा, उसके पास एक लम्बा छुरा था। यह छुरा उसने पूरे जोर के साथ रमजान की पसली में मारा। छुरा इतने जोर से अन्दर

धसा कि वह चोर फिर उसे बाहर निकाल भी न सका । रमज़ान के गले से एक तेज़ चीख निकली । इस घायल अवस्था में भी रमज़ान ने अपने दांतों से चोर की अंगुली को इतने ज़ोर से काटा कि वह उसके हाथ से कटकर अलग हो गई, परन्तु अगले ही क्षण रमज़ान निस्तेज हो गया ! दोनों चोर भाग गए।

ग्राम भर के लोग उस अन्धेरी और भयानक रात में नाले के किनारे जमा हुए । रमज़ान इस समय अन्तिम श्वास ले रहा था । उसका बूढ़ा बाप भी रोते-रोते वहां पहुंचा । रमज़ान को अब भी थोड़ा होश था । उसने कहा, 'बाबा, रोओ नहीं ।'

सब ग्रामीण हतबुद्धि-से होकर आंसू बहा रहे थे । दूर पर ग्राम से रो-रोकर आती हुई औरतों का करुण क्रन्दन सुनाई दे रहा था । यह करुण ध्वनि क्रम-क्रम से और समीप आती जा रही थी । इसी समय रमज़ान ने धीमे स्वर में कहा, 'बाबा, इस बात का ख्याल रखना । ये दोनों आदमी किसी दूसरे इलाके के हैं । हमारे आसपास के नहीं हैं । यह ख्याल रखना कि इस घटना के कारण मेरे पीछे किसी पड़ोसी पर कोई आफत न आए ।'

थोड़ी देर में वीर रमज़ान का शरीर प्राणशून्य हो गया ।

ग. बलिदान

देवेन्द्र एक धनी ज़मींदार का तरुण वयस्क पुत्र था । इसके पिता अपनी ज़मींदारी के एक बढ़िया बंगले में रहते थे । उनका यह बंगला रेलवे स्टेशन से बहुत दूर नहीं था । देवेन्द्र को उन्होंने शिक्षा प्राप्ति के लिए लाहौर भेज रखा था, परन्तु अपनी अधिकांश छुट्टियां वह अपनी ज़मींदारी में ही काटा करता था ।

देवेन्द्र आजकल लाहौर के गवर्नमेंट कालेज के तीसरे वर्ष में पढ़ता है । कुछ दिन हुए वह बड़े दिनों के अवकाश में अपने घर गया था । वहां उसके साथ एक घटना घटी थी । देवेन्द्र के कोमल हृदय पर इस घटना का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है ।

देवेन्द्र जिस समय अपने एक नौकर के साथ घर के दरवाज़े पर पहुंचा, उसी समय घर में से एक बहुत सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट कुत्ता भौंकता हुआ बाहर निकला । देवेन्द्र इस आवाज़ से कुछ घबराया ही था कि नौकर ने कुत्ते को

पुचकारा, 'मोती ! मोती ! पुच् ! पुच् !'

मोती इस समय तक बाहर आ गया था। देवेन्द्र को आज उसने पहली ही बार देखा था, फिर भी वह अजान पशु यह समझ गया कि देवेन्द्र को भौंककर उसने कुछ ठीक नहीं किया। वह क्षमाप्रार्थी नेत्रों से देवेन्द्र की ओर देखते रह-कर अपनी पूछ हिलाने लगा, परन्तु देवेन्द्र को अब इस ओर ध्यान देने की फुरसत नहीं थी। वह अपनी बहनों और छोटे भाइयों से घिर गया था।

भोजन के समय देवेन्द्र को मोती के पुनः दर्शन हुए। देवेन्द्र जब अपने खाने के कमरे में गया, तब मोती वहा पहले ही से विराजमान था। देवेन्द्र को आता देख वह अदब के साथ उठा और देवेन्द्र के बैठ जाने पर बैठ गया। देवेन्द्र भोजन करने लगा, उसकी छोटी बहन शची परोसने का काम कर रही थी। मोती सकाम भाव से देवेन्द्र के हिलते हुए जबड़ों की ओर देखने लगा। आज भोजनालय में बहुत बढ़िया-बढ़िया माल परोसा जा रहा है, मोती भी यह बात समझ गया था। देवेन्द्र ने अपनी थाली में से आलू के परौठे का एक बड़ा-सा टुकड़ा तोड़कर मोती के सामने फेंक दिया। मोती ने पूंछ हिलाते-हिलाते बड़े आनंद के साथ उस ग्रास को उदरस्थ कर लिया। बस, अब देवेन्द्र और मोती में गहरी दोस्ती हो गई। मोती समझ गया कि यह मेरे नये मालिक हैं।

पूरे नौ दिनों तक मोती देवेन्द्र की छाया बनकर उसके साथ रहा। देवेन्द्र से वह इस थोड़े अरसे में ही इतना अधिक हिल-मिल गया, जितना वह अब तक घर के किसी अन्य व्यक्ति से न हिल सका था। नौ दिनों के बाद देवेन्द्र की विदाई का समय आया। मोती भी स्टेशन तक साथ ही साथ गया। आज वह बेचारा बहुत उदास था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मेरा यह नया मालिक मुझे क्यों इतनी जल्दी छोड़कर चल दिया है। स्टेशन पर घोड़े से उतरकर देवेन्द्र ने मोती को थपकियां दे-देकर खूब प्यार किया। इसके बाद गाड़ी आने पर वह अन्दर जाकर उसमें सवार हो गया। स्टेशन छोटा था, अतः गाड़ी वहां बहुत थोड़ी देर रुकती थी। देवेन्द्र के पिता और उसके छोटे भाई तो प्लेटफार्म पर चले गए थे, परन्तु उसके नौकर अन्दर नहीं जा सके थे, इस कारण वे लोग प्लेटफार्म की समाप्ति पर, स्टेशन के लकड़ी से बने जंगले के बाहर, लाइन के बिलकुल किनारे जाकर खड़े हो गए थे। मोती भी अन्दर नहीं जा सका था, इसलिए वह भी उसी स्थान पर आ खड़ा हुआ था। गाड़ी

सीटी देकर चल दी। देवेन्द्र फर्स्ट क्लास के डिब्बे की खिड़की में से मुंह बाहर निकालकर अपने पिता और भाइयों की ओर देखने लगा।

क्रमशः गाड़ी प्लेटफार्म के बाहर आई। देवेन्द्र का सिर अब भी खिड़की से बाहर ही था। उसके नौकरों ने उसे सिर झुकाकर प्रणाम किया। देवेन्द्र भी उनके नमस्कारों का हाथ हिला-हिलाकर जवाब देने लगा। उफ, यह क्या? देवेन्द्र को देखते ही वह अबोध और स्नेही मोती रोता हुआ पूरे बल के साथ ऊपर की तरफ उछला। गाड़ी काफी तेज हो गई थी। बेचारा जानवर खिड़की से टकराकर नीचे गिरा, और उसी क्षण रेल के भारी पहियों ने उसके फूल से शरीर को दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया।

एक सप्ताह

गुलमर्ग
३ अगस्त.......

प्यारे कमल,

मुझे माफ करना, उस दिन शाम की चाय के समय तुम मेरा इन्तजार करते रहे होगे, और मैं इधर खिसक आया। आज तुमसे १२०० मील की दूरी पर और तुम्हारे कलकत्ता महानगर मे ९००० फुट अधिक ऊंचाई पर बैठकर मैं तुम्हे यह पत्र लिख रहा हूं। तुम जानते ही हो कि मै किस तबीयत का आदमी हूं। उफ, वहां कितना बोझ था। काम, काम, हर वक्त काम। मेरी तबीयत सहसा ऊब गई और तुम्हें भी सूचना दिए बिना मै एकाएक इतने लम्बे सफर के लिए खिसक आया। उस दिन चाय के समय मुझे मौजूद न पाकर यद्यपि तुम मुझपर काफी खीज तो लिए ही होगे, फिर भी उस असुविधा के लिए मुझे माफ कर देना।

हिमालय की यह विशाल घाटी बड़ी सुहावनी है। घने जंगल, निर्मल झरने, विस्तृत मैदान, तीन ओर बरफ से ढकी पहाड़ों की ऊंची-ऊंची चोटियां और चौथी ओर नीचे दूर पर दिखाई देने वाली वुलर झील। इस स्थान से मैं सचमुच प्यार करता हूं। यहां एक सप्ताह बिलकुल निकम्मा रहकर काटूंगा। कुछ नही करूंगा। केवल तुम्हें ही पत्र लिखूंगा और तुम्हारे पत्रों को छोड़कर और कुछ भी नहीं पढूंगा।

भाई कमल, मैं अकेला हूं। तुमने अनेक बार मेरे इस अकेलेपन की आलोचना की है; मगर यहा आकर मै अनुभव करता हूं कि जैसे प्रकृति मेरी मां है। मैं अकेला कहां हूं, मैं तो अपनी मां की गोद में हूं।

चिन्ता न करना। मैं यहां एक सप्ताह से अधिक नहीं ठहरूंगा। एक सप्ताह

यहां रहूंगा और उसके बाद दो दिन मुझे कलकत्ता पहुंचने में लगेंगे। १२ अगस्त के सायंकाल तुम मुझे अपनी चाय की टेबिल पर ही पाओगे।

बाहर एक कसा हुआ घोडा मेरा इन्तज़ार कर रहा है, अतः बाकी कल।

तुम्हारा—
स०

२

गुलमर्ग
४ अगस्त.........

भाई कमल,

सुबह ६ बजे विस्तर से उठा हूं। अभी तक नींद की खुमारी नहीं टूटी। कल बहुत दिनों के बाद घुड़सवारी की थी, अतः टांगें कुछ थक गई हैं। आज कही नहीं जाऊंगा। मेरे मकान में और कोई नहीं है। मैं अपने सोफे पर अकेला पड़ा हूं। बाहर धीमी-धीमी वर्षा हो रही है। चारों तरफ सन्नाटा है। ओह, सामने की इस खिड़की से कितना अनंत सौंदर्य मुझे दिखाई दे रहा है।

आज कुछ नही लिखूंगा। सोचा था कि आज एक चित्र बनाऊंगा; मगर अब कुछ नहीं करूंगा। घंटों तक इसी तरह निश्चेष्ट भाव से पड़े रहकर, इस खिड़की की राह से प्रकृति का, अपनी मां का, अनूठा सौंदर्य देखूंगा।

अच्छा, कल तक के लिए विदा।

स्नेहाधीन—
म०

३

गुलमर्ग
५ अगस्त.........

कमल,

इस समय रात के ११ बजे हैं, और मेरी आंखों में नींद नहीं है। सब तरफ गहरा सन्नाटा है। कहीं से कोई आवाज़ नहीं आ रही। मेरे कमरे में बिजली की बत्ती जल रही है। खिड़कियां बंद हैं; सरदी इतनी अधिक है कि मैं उन्हें खोलकर नहीं रख सका। सन्नाटा इतना गहरा है कि बिजली के प्रकाश से जगमगा रहे इस कमरे में बैठकर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है, जैसे इस संपूर्ण

विश्व में केवल मैं ही मैं बच रहा हूं, और कोई भी नहीं है। कहीं कोई भी नही है। सिर्फ मै ही हूं; अकेला मैं।

मगर भाई कमल, आज सहसा, न जाने क्यों, मुझे अपना यह अकेलापन कुछ अनुभव-सा होने लगा है। ऐसा क्यों हुआ ? क्या सिर्फ इसलिए कि सब ओर सन्नाटा है और मेरी आंखो मे नीद नहीं है ? नही कमल, यह बात नही है। मेरे हृदय में आज सहसा एक नई-सी अनुभूति उठ खड़ी हुई है, जो बिलकुल धुधली और अस्पष्ट-सी है। मै अनुभव करता हूं कि मैंने आज जो कुछ देखा है, उसमें विचित्रता ज़रा भी नही है। मैने जो कुछ आज देखा है, उसे यदि मैं यहा लिखूगा, तो या तो तुम मेरा मज़ाक उड़ाने लगोगे, अथवा मेरे सम्बन्ध मे बिलकुल भ्रांत-सी धारणा बना लोगे। मगर भाई, मैं कहता हूं, मैं तुमसे अनुरोध करता हू कि तुम इन दोनों में से एक भी बात न करना। मेरी इस चिट्ठीकोपढ जाना, और अगर हो सके तो उसी वक्त भुला देना। बस, और कुछ भी नही।

हां, तो सुनो। बात है तो कुछ भी नहीं; मगर फिर भी सुनो। आज दोपहर को बादल ज़रा छंट गए थे और सूरज निकल आया था। जैसे विधाता ने इस हरी-भरी घाटी को धो-पोछकर धूप में सुखाने के लिए बिछा दिया हो। दोपहर के भोजन के बाद मैं अपनी इस छोटी-सी कोठी के खुले सहन में धीरे-धीरे चहलकदमी करने लगा। सहन के फाटक के सामने ही स्वच्छ जल का एक छोटा-सा झरना बह रहा है। उसके ऊपर अनघड़ लकड़ी का एक इतना सुन्दर पुल है कि उसे देखते ही कलरबक्स लेकर उसका चित्र बनाने की इच्छा होती है। मैं धीरे-धीरे एक बार इस पुल तक जाता था, और उसके बाद कोठी के बरामदे तक वापस लौट आता था।

एक बार के चक्कर में जब मैं पुल के निकट पहुंचा, तो मैं चौंक पड़ा। मैंने देखा, वहां किसी भद्र कुल की एक नौजवान लड़की खड़ी थी। अकेली। उसका ध्यान मेरी ओर नहीं था। झरने के पानी की मधुर ध्वनि ने मेरे चलने की आवाज को अपने भीतर छिपा लिया था, इससे मेरे बहुत निकट पहुंच जाने पर भी वह यह न जान सकी कि उसके निकट कोई अन्य व्यक्ति भी मौजूद है। और मुझे तो तुम जानते ही हो, जितना भूला हुआ-सा चलता हूं। मुझे तब तक उस लड़की की उपस्थिति का ज्ञान नहीं हुआ, जब तक मैं उसके बिलकुल निकट पहुंच नहीं गया।

मैं चौंका, और उधर उसी समय उस लडकी की निगाह मुझपर पड़ी। शायद बिलकुल ही अकस्मात्। वह भी चौंक गई। क्षण भर के लिए सहसा उसकी और मेरी आंखें आपस में मिल गईं। अपने अनजान में हम दोनों एक दूसरे के एकदम निकट पहुंच गए थे। हम दोनों ने एक साथ एक दूसरे को देखा और दोनों ही अकस्मात् एक साथ चौंके।

बस, भाई कमल, बात इतनी ही है, और कुछ भी नहीं। मैं उसी क्षण वापस लौट पड़ा था और जान पड़ता है, वह लड़की भी वहां से चल दी थी; मगर इस जरा-सी बात ने न जाने क्यों मेरे दिल पर बहुत अजीब-सा प्रभाव डाला है। इस बात को हुए अब ९ घंटे बीत चुके है, और इन ९ घंटों में चौंकी हुई हिरणी की-सी वे आंखे मेरे मानसिक नेत्रों के सामने बीसियों बार घूम गई है।

तुम सोचते होगे, इस सबमें कोई खास बात जरूर है। और नहीं तो कम से कम वह लड़की कोई असाधारण सुन्दरी तो अवश्य ही रही होगी। मगर वास्तविकता यह नहीं है। उस लड़की के चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं थी। मामूली कद, मामूली चेहरा, गेहुंआ रंग। और भी कोई बात उसमें ऐसी नहीं थी, जिसे असाधारण कहा जा सके। अपने नगर में हम लोग इस कन्या से अधिक रूप-सौंदर्यवाली बीसियों युवतियों को रोज देखते है। मेरी परिचित कुमारियों में भी कितनी ही सौन्दर्य की दृष्टि से उससे कही बढ़-चढ़कर हैं। यहां गुलमर्ग में भी उससे बहुत अधिक सुन्दरियों को मैंने काफी संख्या में देखा है। फिर भी! कुछ समझ में नहीं आता कि इस 'फिर भी' का कारण क्या है?

आज इतना ही।

तुम्हारा—
स०

४

गुलमर्ग
६ अगस्त……
प्रातः ८ बजे

कमल,

नींद से उठते ही सबसे पहले मेरी निगाह रात के पत्र पर गई। रात मैं

क्या खुराफात-सी लिख गया था। दिल में आता है, वह पत्र फाड़ डालूं।

जी कुछ भारी-सा है। कुछ लिखने की भी इच्छा नहीं होती। और इस तरह निश्चेष्ट भाव से यहां चुपचाप पड़े रहना तो आज मुझे सह्य भी नहीं हो सकता। तुम जानते हो, ऊपर की दो लाइनें लिखने में मैंने कितना समय लगाया है? पूरे २२ मिनट। इस समय दूसरा पत्र लिख सकना मेरे लिए असम्भव है। चलो, अब कहीं आवारागर्दी करने जाऊंगा।

सायंकाल ६ बजे

मेरा जी इस समय बहुत प्रसन्न है। मेरी टांगें, मेरा सम्पूर्ण शरीर बिलकुल थकी हुई हालत में है; परन्तु जी चाहता है कि मैं इस समय भी नाचूं, कूदूं और इधर-उधर दौड़ता फिरूं। मेरे हृदय में इस समय उत्साह का जो अन्धड़-सा चल रहा है, मुझे मालूम है कि उसकी प्रतिक्रिया भी जरूर होगी। अपने जी के इस व्यर्थ उत्साह को बहकाने का मुझे इससे बढ़कर और कोई उपाय नहीं मिला कि सुबह का पत्र पूरा करने बैठ जाऊं।

सांझ हो आई है। आज का सारा दिन मैंने सैर-सपाटे में काटा है। थोड़ी ही देर पहले घर वापस आया हूं। यह चिट्ठी बीच में छोड़कर मैं एक मजबूत घोड़े पर सैर के लिए निकल गया था। यहां के सभी मार्ग मेरे जाने-पहचाने हैं, इससे कोई मार्ग दर्शक भी मैंने अपने साथ नहीं लिया था। मेरे निवास-स्थान से करीब ८ मील की दूरी पर एक बड़ा पहाड़ी झरना है। इस झरने को यहां 'निगली नाला' कहते हैं। मैं आज इसी निगली नाले तक गया था।

खूब टेढ़ी-मेढ़ी राह है। कहीं पहाड़ों के चक्कर है, कहीं घास से मढ़े मैदान, कहीं ऊंचाई-निचाई, कहीं पेचदार मोड़ और कहीं घने जंगल। रास्ता क्या है, ऊबड़-खाबड़-सी एक पगडण्डी है। इस रास्ते पर मैंने अपना घोड़ा खूब निश्चिन्तता के साथ दौड़ाया। ऊपर असंख्य पक्षियों का मधुर कलरव था। राह के दोनों ओर फूल-पत्तियां थीं। हवा में सुगन्ध थी। आसमान में सूरज बादलों के साथ आंख-मिचौनी खेल रहा था। कभी सरदी बढ़ जाती थी और कभी हल्की-हल्की घाम निकल आती थी। शीघ्र ही मैं निगली नाले पर जा पहुंचा। झरने के दोनों ओर घना जंगल है। बीच में बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी हैं। एक-एक चट्टान सैंकड़ों-हजारों टन की होगी। झरने का स्वच्छ जल इन भीमकाय चट्टानों से टकराकर शोर मचाता है, फिसलता है और उछल-उछलकर इन्हें गीला करता

है। झरने की शीतलता, झाग, सफेदी और शोर—ये सब निरन्तर बने रहते हैं। सदा ताज़े, सदैव उत्साहपूर्ण।

घोड़े को घास चरने के लिए खुला छोड़कर मैं दो-तीन घण्टों तक झरने की चट्टानों पर स्वच्छन्दतापूर्वक कूदता-फांदत रहा। अपने कैमरे से इस झरने के मैंने अनेक फोटो भी लिए। खाया, पिया और उसके बाद वापस लौट चला।

वापसी में मैंने अपने घोड़े को सरपट नहीं दौड़ाया। राह के दृश्यों ने मेरा सम्पूर्ण ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था, अतः घोड़े पर मैंने किसी तरह का शासन नहीं किया। वह आजादी के साथ, चाहे जिस चाल से, चलता रहा। सहसा सामने की ओर से मुझे एक चीज़-सी सुनाई दी। मेरी तन्मयता भंग हो गई। मैंने देखा सामने के मैदान में एक घोड़ा बेतहाशा दौड़ा चला जा रहा है, और उसपर एक नारी सवार है। घोड़े की जीन को, लेटी हुई-सी दशा में, कसकर पकड़े हुए वह नारी सहायता के लिए भरसक चिल्ला रही थी। उसी निगाह में मुझे यह भी दिखाई दिया कि पगडण्डी पर तीन-चार अन्य घुड़सवार भी मौजूद हैं। सब की सब लड़कियां ही। वे सब असमर्थों का-सा भाव धारण किए अपने काश्मीरी कुलियों को वह घोड़ा पकड़ने का आदेश दे रही थीं।

एक ही क्षण में मैंने अपना घोड़ा उसी ओर दौड़ा दिया और शीघ्र ही उस स्त्री-सवार के निकट जा पहुंचा। अपने घोड़े पर से कूदकर मैंने उस घोड़े की लगाम पकड़ ली।

फिर वही आंखें!

मैं सहसा घबरा-सा गया। मुझे यह भी नहीं सूझा कि मैं क्या कहकर उस कन्या को आश्वासन दूं। मगर मेरी घबराहट की ओर उसका ध्यान नहीं गया। वह स्वयं बहुत संकटापन्न दशा में जो थी।

पहले उसीने मुझे धन्यवाद दिया। मालूम होता है, उसने मुझे पहचाना नहीं। धन्यवाद देकर उसने शीघ्रता से कहा, 'बड़ा नटखट घोड़ा है। मैं पहले ही कह रही थी कि मैं इसपर सवार न होऊंगी।'

उसकी आवाज़ में अभी तक भय की कंपकंपी थी। मैंने कहा, 'आपने बड़ी हिम्मत दिखाई है। घोड़े की चाल इतनी तेज़ हो जाने पर भी आप गिरी नहीं।'

वह इसपर लजा-सी गई। उसने कहा, 'मैं घुड़सवारी तो क्या जानूं। सुना था, इधर के घोड़े बड़े सीधे होते हैं।'

इसी समय उसके साथ की अन्य सभी लड़कियां और घोड़े वाले कुली भी वहां आ पहुंचे। घोड़े की लगाम अभी तक मेरे हाथों में थी, और वह लड़की भी अभी तक घोड़े की पीठ पर ही थी। एक काश्मीरी ने लगाम अपने हाथों में थाम ली और दूसरे ने जीन को सम्भाला। वह लड़की नीचे उतर आई। उसके साथ की सब लड़कियों ने मुझे धन्यवाद दिया, और मैंने कहा कि इसमें धन्यवाद की बात ही क्या है।

उन्होंने मुझसे पूछा, 'आप किस जगह ठहरे हुए हैं?'

मैंने अपना पता बता दिया।

मेरे निवास-स्थान का पता सुनकर जैसे उस लड़की ने मुझे पहचान लिया। उसके मुंह से हठात् निकला, 'ओहो!' परन्तु उसी क्षण अपने को पूर्णतः संयत करके उसने बड़ी शान्ति के साथ कहा, 'मैं समझ गई।'

इसके बाद दो-चार मामूली-सी और बातें भी हुईं, और तब वे लड़कियां निगली नाले की ओर बढ़ गईं। जाते हुए वे कल प्रातः के लिए मुझे अपने यहां प्रातराश का निमन्त्रण भी देती गईं।

उस नटखट घोड़े की रास अब एक काश्मीरी के हाथ में थी। सभी घोड़े अब बहुत धीमी चाल से जा रहे थे, और वह घोड़ा सबसे पीछे कर दिया गया था। मेरी नज़र अभी तक उसी ओर थी कि कुछ ही दूर जाकर उस लड़की ने पीछे की ओर घूमकर देखा।

अचानक एक बार पुनः मेरी और उसकी नज़र मिल गई। ओह, फिर वही निष्पाप, लज्जाभरी, स्वच्छ आंखें!

भाई कमल, मुझे नहीं मालूम कि वे लड़कियां कौन हैं। सभी नवयुवतियां हैं। मेरा अनुमान है कि उनमें से अभी तक किसीका विवाह नहीं हुआ। मैं उनमें से किसीका नाम भी नहीं जानता। मकान का पता देने के लिए केवल एक पुरुष का नाम ही उन्होंने मुझे बताया है। मैं यह भी नहीं जानता कि वे आपस में बहनें हैं, एक साथ पढ़ने वाली हैं या रिश्तेदार हैं। मुझे कुछ भी नहीं मालूम। परन्तु एक बात मैंने अच्छी तरह देख ली। वह यह कि उस लड़की के गेहुंए चेहरे में असाधारणता ज़रा भी नहीं है। उसकी आंखों में, उसकी पलकों

या भौंहों में भी ऐसी बात कोई नहीं है, जिसके सम्बन्ध में कवि लोग बड़ी-बड़ी उपमाएं खोज-खोजकर दिया करते हैं। फिर भी उसकी निगाह में कुछ है। क्या है—यह मैं नहीं कह सकता। मगर कुछ है जरूर।

बाहर अंधेरा हो गया है। सरदी भी अब अनुभव होने लगी है, अतः प्रणाम।

अभिन्न

स०

५

गुलमर्ग

७ अगस्त......

प्यारे कमल,

आज जाकर मुझे तुम्हारा पहला पत्र मिला है। तुम सच मानो, गुलमर्ग के छोटे-से बाजार के साइनबोर्डों के अतिरिक्त यही एक पहली चीज है, जिसे मैंने इन पांच-छः दिनों में पढ़ा है।

मेरा आज का दिन भी बड़े आनन्द से गुजरा। सुबह-सुबह मैं उन लोगों के यहां चाय पीने गया था। उसके बाद हम लोग एक साथ खिलनमर्ग की सैर के लिए निकल गए। वहां घण्टों तक उस खुले मैदान में बैठकर ताश खेला किए, सैर की, खेले-कूदे और फिर वापस लौट आए। तब सब लोग मेरे निवास-स्थान पर आए। शाम की चाय यहां ही हुई, और अभी-अभी मैं उन्हें उनके घर तक छोड़कर आ रहा हूं।

मुझे उनका परिचय भी मिल गया है। वह लड़की अपने भाई और एक चचेरी बहन के साथ, काफी दिन हुए, यहां आई थी। उसके पिता एक सम्पन्न व्यापारी है, उनका कारोबार खूब चलता हुआ है। वह लड़की लाहौर के एक महिला कालेज में पढ़ती है, और बाकी तीनों लड़कियां उसीकी क्लास की हैं, उसकी मित्र हैं और उसीके निमन्त्रण पर यहां आई हैं। उनके भाई का स्वभाव भी बड़ा मधुर है। गुलमर्ग में उसके दोस्तों की इतनी अधिकता है कि उनकी ओर से छुटकारा पा सकना ही उसके लिए कठिन हो जाता है। हम लोग आपस में खूब हिलमिल गए हैं। मैंने उन लोगों के अनेक फोटो भी लिए हैं।

आज जल्दी ही सो जाने को जी चाहता है। तुम्हारा पत्र इस समय मेरी

आखों के सामने नहीं है। कुछ याद नहीं आ रहा कि तुमने उसमें कोई बात पूछी भी थी या नहीं। चलो, जाने दो। यह तो मुझे मालूम ही है कि तुम कोई खास काम की बात तो लिख ही नहीं सकते।

यह भी असम्भव नहीं कि मैं यहां कुछ दिन और रुक जाऊं।

स्नेही
स०

६

गुलमर्ग
८ अगस्त……

कमल,

सांझ डूबने को है। दिन भर से आसमान में बादल छाए हुए थे। इस समय मूसलाधार वर्षा हो रही है। मेरे कमरे की सब खिड़कियां बन्द हैं। कमरे मे बत्ती जल रही है। मेरे कानों मे एक संगीत गूंज रहा है, बहुत ही कोमल, बहुत ही पवित्र और बहुत ही मधुर। इस संगीत में शब्द नहीं, केवल स्वर है। स्वर भी क्या, केवल गूंज है। छत की टीन पर वर्षा पडने की जो यकसां आवाज़ हो रही है, वह इस गूंजमय संगीत का साज़ है और ठण्डी, गीली हवा की धू-धू इस संगीत के सहकारी वाद्य का काम दे रही है।

मैं अकेला हूं। दिन भर अकेला नहीं था; परन्तु इस समय फिर से अकेला ही हूं। वह अपने भाई और छोटी बहन को साथ लेकर यहां आई थी। ३ बजे के लगभग उसके भाई चाय के एक निमन्त्रण पर बाहर चले गए। वह और उसकी बहन यहां ही रह गई। कल वाले फोटोग्राफ धुलकर आ गए थे। उन फोटोज़ की आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही और भी बीसियों तरह की बाते हुई। शाम का अंधेरा जब बढ़ने लगा, तो मैंने उससे अनुरोध किया कि वह कोई गाना सुनाए। बड़ी झिझक के बाद उसने एक गाना मुझे सुनाया। ओह, वह कितना मधुर गाती है। मैं किसी दूसरे लोक में जा पहुंचा। मुझे नहीं मालूम कि संगीत कब समाप्त हुआ। हां, उसके भाई साहब का आना मुझे ज़रूर याद है। देर हो गई थी, अतः वे लोग लौटने को हुए। मैंने उन लोगों को सहन के फाटक से ही विदा दे दी। उन्हें छोड़ने के लिए दूर तक केवल इसी कारण साथ नही गया, क्योंकि मुझे ज्ञात था कि उसके भाई साहब चुपचाप चलना पसन्द नही

करेंगे, और इस समय मैं न कुछ सुनना चाहता था, न बोलना चाहता था।

उन्हें गए थोड़ी देर हुई थी कि जोर की वर्षा शुरू हो गई। मैं तब से इसी कमरे में बैठा हूं। संगीत कभी का थम गया, गाने वाली भी चली गई; मगर उसकी गूंज अभी तक बाकी है—उसी तरह जीवित रूप में बाकी है। संगीत की यह अनिर्वचनीय, अमूर्त्त गूंज वर्षा की आवाज़ का प्राकृतिक साज पाकर मानो और भी अधिक भेदिनी बन गई है।

कमल, तुम मेरे सुख-दुख के साथी हो। अपनी सभी अनुभूतियां तुमसे कहकर मैं अपने चित्त का बोझ हल्का किया करता हूं। मगर यह एक अनुभूति कुछ ऐसी है कि इसे मैं ठीक तौर से व्यक्त भी नहीं कर सकता। मेरे जी में आंधी-सी चल रही है; मगर यह आंधी बिलकुल शब्द-रहित है, जैसे नदी का वेगवान पानी अन्दर ही अन्दर से किनारे के कछारों को काट रहा हो।

अपनी एक पुरानी धुंधली-सी अनुभूति मुझे इस समय साफ तौर से समझ मे आ रही है। हम मनुष्यों के बाह्य जीवन आपस में दूसरे पर इतने आश्रित हो गए हैं कि हम लोगों के लिए इस तरह का एक दिन भी काटना सम्भव नहीं रहा, जब कि एक मनुष्य का किसी भी दूसरे मनुष्य से किसी तरह का वास्ता न पड़े। इसपर भी मैं सदैव अनुभव करता रहा हूं कि हम लोग आपस में एक दूसरे से बहुत अधिक दूर हैं। हृदयों का यह पारस्परिक अपरिचितपन हमारे दैनिक व्यवहार में, हमारे सामान्य जीवन में, कोई बाधा नहीं डालता। फिर भी हमारे जी को, हमारे अन्तःकरण को और शायद हमारी अन्तरात्मा को भी यह चाह बनी रहती है कि वह किसी दूसरे जी को, किसी दूसरे अन्तःकरण को और शायद दूसरी अन्तरात्मा को भी अपना ले। यही चीज, अन्तरात्मा की यही चाह, प्रेम है, जिसे वासना का परिधान पहनाकर हम लोग बहुत शीघ्र मैला कर डालते है। आज इस संगीतमय, ठण्डे, शांत और सुन्दरतम वातावरण में मैं यह अनुभव करने लगा हूं कि मेरे अन्तःकरण में भी इसी तरह की कोई बेचैनी सहसा उठ खड़ी हुई है।

आज उससे मेरी खूब बातें हुईं। अधिकांश बातें बिलकुल बेमतलब की थीं; मगर फिर भी वे बातें अत्यन्त मधुर और दिल को सहलाने वाली थीं।

एक बात ऐसी भी हुई, जिसने मेरे हृदय को वेग के साथ झनझना दिया। बातचीत में उसने जरा हैरानी के साथ मुझसे पूछा, 'आप अकेले ही रहते हैं?'

आंखों के सामने नहीं है। कुछ याद नहीं आ रहा कि तुमने उसमें कोई बात पूछी भी थी या नहीं। चलो, जाने दो। यह तो मुझे मालूम ही है कि तुम कोई खास काम की बात तो लिख ही नहीं सकते।

यह भी असम्भव नहीं कि मैं यहां कुछ दिन और रुक जाऊं।

स्नेही
स०

६

गुलमर्ग
८ अगस्त······

कमल,

सांझ डूबने को है। दिन भर से आसमान में बादल छाए हुए थे। इस समय मूसलाधार वर्षा हो रही है। मेरे कमरे की सब खिडकियां बन्द हैं। कमरे में बत्ती जल रही है। मेरे कानों में एक संगीत गूंज रहा है, बहुत ही कोमल, बहुत ही पवित्र और बहुत ही मधुर। इस संगीत में शब्द नहीं, केवल स्वर है। स्वर भी क्या, केवल गूंज है। छत की टीन पर वर्षा पड़ने की जो यकसां आवाज़ हो रही है, वह इस गूंजमय संगीत का साज़ है और ठण्डी, गीली हवा की धू-धू इस संगीत के सहकारी वाद्य का काम दे रही है।

मैं अकेला हूं। दिन भर अकेला नहीं था; परन्तु इस समय फिर से अकेला ही हूं। वह अपने भाई और छोटी बहन को साथ लेकर यहां आई थी। ३ बजे के लगभग उसके भाई चाय के एक निमन्त्रण पर बाहर चले गए। वह और उसकी बहन यहां ही रह गई। कल वाले फोटोग्राफ धुलकर आ गए थे। उन फोटोज़ की आलोचना-प्रत्यालोचना होती रही और भी बीसियों तरह की बातें हुईं। शाम का अंधेरा जब बढ़ने लगा, तो मैंने उससे अनुरोध किया कि वह कोई गाना सुनाए। बड़ी झिझक के बाद उसने एक गाना मुझे सुनाया। ओह, वह कितना मधुर गाती है। मैं किसी दूसरे लोक में जा पहुंचा। मुझे नहीं मालूम कि संगीत कब समाप्त हुआ। हां, उसके भाई साहब का आना मुझे जरूर याद है। देर हो गई थी, अतः वे लोग लौटने को हुए। मैंने उन लोगों को सहन के फाटक से ही विदा दे दी। उन्हें छोड़ने के लिए दूर तक केवल इसी कारण साथ नहीं गया, क्योंकि मुझे ज्ञात था कि उसके भाई साहब चुपचाप चलना पसन्द नहीं

करेंगे, और इस समय मैं न कुछ सुनना चाहता था, न बोलना चाहता था।

उन्हे गए थोड़ी देर हुई थी कि जोर की वर्षा शुरू हो गई। मैं तब से इसी कमरे में बैठा हूं। संगीत कभी का थम गया, गाने वाली भी चली गई; मगर उसकी गूंज अभी तक बाकी है—उसी तरह जीवित रूप में बाकी है। संगीत की यह अनिर्वचनीय, अमूर्त्त गूंज वर्षा की आवाज़ का प्राकृतिक साज पाकर मानो और भी अधिक भेदिनी बन गई है।

कमल, तुम मेरे सुख-दुख के साथी हो। अपनी सभी अनुभूतियां तुमसे कहकर मै अपने चित्त का बोझ हल्का किया करता हूं। मगर यह एक अनुभूति कुछ ऐसी है कि इसे मैं ठीक तौर से व्यक्त भी नहीं कर सकता। मेरे जी में आंधी-सी चल रही है; मगर यह आंधी बिलकुल शब्द-रहित है, जैसे नदी का वेगवान पानी अन्दर ही अन्दर से किनारे के कछारों को काट रहा हो।

अपनी एक पुरानी धुंधली-सी अनुभूति मुझे इस समय साफ तौर से समझ मे आ रही है। हम मनुष्यों के बाह्य जीवन आपस मे दूसरे पर इतने आश्रित हो गए हैं कि हम लोगों के लिए इस तरह का एक दिन भी काटना सम्भव नही रहा, जब कि एक मनुष्य का किसी भी दूसरे मनुष्य से किसी तरह का वास्ता न पडे। इसपर भी मैं सदैव अनुभव करता रहा हूं कि हम लोग आपस में एक दूसरे से बहुत अधिक दूर है। हृदयों का यह पारस्परिक अपरिचितपन हमारे दैनिक व्यवहार में, हमारे सामान्य जीवन में, कोई बाधा नहीं डालता। फिर भी हमारे जी को, हमारे अन्तःकरण को और शायद हमारी अन्तरात्मा को भी यह चाह बनी रहती है कि वह किसी दूसरे जी को, किसी दूसरे अन्तःकरण को और शायद दूसरी अन्तरात्मा को भी अपना ले। यही चीज, अन्तरात्मा की यही चाह, प्रेम है, जिसे वासना का परिधान पहनाकर हम लोग बहुत शीघ्र मैला कर डालते हैं। आज इस सगीतमय, ठण्डे, शांत और सुन्दरतम वातावरण में मैं यह अनुभव करने लगा हू कि मेरे अन्तःकरण में भी इसी तरह की कोई बेचैनी सहसा उठ खडी हुई है।

आज उससे मेरी खूब बातें हुईं। अधिकांश बातें बिलकुल बेमतलब की थी; मगर फिर भी वे बातें अत्यन्त मधुर और दिल को सहलाने वाली थीं।

एक बात ऐसी भी हुई, जिसने मेरे हृदय को वेग के साथ झनझना दिया। बातचीत में उसने जरा हैरानी के साथ मुझसे पूछा, 'आप अकेले ही रहते हैं ?'

मैंने कहा, 'हां।'

उसने पूछा, 'सदा इसी तरह रहते हैं ?'

मैंने कहा, 'प्रायः सदा ही।'

कुछ क्षण के बाद उसने मुझसे पूछा, 'सुबह आपको प्रातराश देने का काम किसके हाथों में है ?'

मुझे उसका यह भोला-सा सवाल बहुत ही मधुर जान पड़ा। मैंने कहा, 'जो लोग मेरी जरूरत की और सब चीजों का इन्तजाम करते हैं।'

उसने फिर पूछा, 'आप सुबह खाते क्या हैं ?'

मैंने कहा, 'दूध, टोस्ट, मक्खन, शहद, ओवलटीन, आम्लेट और थोड़े-से मेवे।'

योंही बिलकुल निष्कलंक भाव से उसने जरा आग्रह के स्वर में कहा, 'अगर मैं आपके प्रातराश का इन्तजाम करनेवाली होती, तो आपको पता लगता कि सुबह के कलेवे में कितना स्वाद आता है।'

मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण झनझना उठा। अपने चेहरे पर हल्की-सी और फीकी मुस्कराहट ले आने के अतिरिक्त मैं उसकी इस अत्यन्त मधुर बात का कोई जवाब नहीं दे पाया।

मुझे मालूम है कि उसने जो कुछ कहा था, उसका कोई गहरा अभिप्राय कदापि नहीं था। सम्भवतः घर के लोगों को प्रातराश देने का इन्तजाम उसी के जिम्मे होगा। मगर फिर भी मेरे दिमाग ने उसकी इस बात को इतनी गहराई के साथ हृदय के पास पहुंचाया कि मेरा सम्पूर्ण अन्तःकरण बहुत ही मीठे स्वरों में ध्वनित हो उठा।

हाथ ठिठुर रहे है। मेरी यह चिट्ठी पढ़कर तुम कहीं ऊबने तो नहीं लगे ? यही बात है न ? या अभी कुछ और सुनने की इच्छा है ?

मगर नहीं, अब और नहीं।

तुम्हारा
स०

७

गुलमर्ग
६ अगस्त......

भाई कमल,

इस समय सुबह के ८ बजे है। मेरा सामान बंधकर तैयार पड़ा है। सहन मे एक कसा हुआ घोड़ा और सामान के टट्टू तैयार खड़े हैं। मैं इसी वक्त नीचे के लिए रवाना होने लगा हूं। बस, तुम्हें यह पत्र लिखकर मैं घोड़े पर सवार हो जाऊंगा। यह भी पूरी तरह सम्भव है कि इस पत्र से पहले ही मैं स्वय तुम्हारे पास पहुंच जाऊं।

कल मैंने इरादा किया था कि कम से कम पांच दिन यहां और ठहरूंगा। उन लोगों से भी मैने यही बात कही थी। आज दोपहर को मुझसे मिलने के लिए उन्हे यहा आना भी है। मगर आज सुबह ही नींद से बहुत जल्दी जगकर मैंने यही निश्चय किया कि मुझे यहां से चल देना चाहिए। इस आशय की एक चिट्ठी उनके नाम पर भी डाल रहा हूं कि एक अप्रत्याशित कार्य के लिए मुझे इस तरह, बिलकुल अचानक कलकत्ता के लिए रवाना होना पड़ रहा है।

तुम इस चिट्ठी को पाकर, अथवा चौथ मुझे ही अपने समीप देखकर हैरान होगे कि बात क्या हुई। कहने को तो मैं तुमसे भी यही कह सकता हू कि अधिक दिन बाहर रहने से काम-काज में हर्ज होता, इसीसे चले आना पडा। परन्तु दरअसल बात ऐसी नहीं है। बात वास्तव में इतनी ही है कि अपनी शिक्षा और अपने संस्कारो से बाधित होकर ही मै आज यहां से चल रहा हू।

कुछ समझे? नहीं, मुझे विश्वास है कि कमल का मोटा दिमाग़ मेरी इस सूक्ष्म बात को ज़रा भी नही समझा होगा।

देखो न, भाई कमल, बात यह है कि पश्चिम की शिक्षा ने, पश्चिम के रीति-रिवाजों ने हमें यह सिखाया है कि हमें अपने दिल को, अपने अन्त:करण को, और अपनेपन को बहुत महंगा बना लेना चाहिए। हम सबसे मिलें-जुले, सबसे मीठी-मीठी बातें करें, सबसे फायदा उठाएं; इच्छा हो और सम्भव हो, तो लोगों से सभी तरह के विनोद-आमोद भी प्राप्त करें; परन्तु अपना अन्त:करण, अपना हृदय अपने ही पास रखें, क्योंकि वह एकमात्र हमारी चीज है और किसीकी भी नहीं। अपने दिल को बिलकुल निस्संग बनाने की भी

आवश्यकता नहीं है। वह तो आत्मविनोद का सर्वश्रेष्ठ साधन है। तुम सबसे मिलो-जुलो, हंसकर, खुलकर, मीठी-मीठी बातें करो; मगर किसीके बन मत जाओ; अपना सब कुछ किसीके अर्पित मत कर दो। भावुकता से बचो, ताकि दूसरों का समर्पण तो तुम्हें मिल सके, पर तुम अपने को कहीं समर्पित न करो।

मैंने यह अनुभव किया है कमल, कि मेरे हृदय में अभी भावुकता बाकी है, वह भी काफी मात्रा में। मेरा हृदय मोह में पड़ गया है। पूरब के अशिक्षित मनुष्यों के समान वह चाहता है कि वह जिसकी ओर झुका है, उसीका बनकर रहे। मगर मेरे दिमाग की शिक्षा ने मेरे जी को यह चेतावनी दी है कि प्रेम का उद्देश्य सर्वस्व-समर्पण की भावना नहीं, अपितु आत्म विनोद मात्र है। मुझे भय है कि यहां रहकर इस खास मामले में मैं अपने मस्तिष्क के आदेश का पालन शायद ही कर सकूं। इससे मैंने निश्चय किया है कि मैं अपने को इस कठिन परीक्षा में न डालूं और यहां से चल दूं। देखूं, इस सबका परिणाम क्या होता है। देखूं, गुलमर्ग को भुला सकता हूं या नहीं। अब तो आ ही रहा हूं।

निश्चिन्त रहो। मैं नये युग की उपज हूं।

अभिन्न—

स०

छत्तीस घंटे

३० मई, सन् १९३५ की रात को ११ बजे के करीब जब सरोजिनी सोने के लिए अपने पलंग पर जाकर लेटी, तब उसके समान सौभाग्यशाली स्त्रियां सम्पूर्ण क्वेटा भर में बहुत कम होंगी। बहुत ही अच्छे स्वभाव का, सुन्दर स्वस्थ और सुशिक्षित पति; गुलाब के खिले हुए फूल से बढ़कर सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट और गोल-मटोल तीन बच्चे; हजारों रुपए मासिक की आमदनी और लाखों की जायदाद; बढ़िया मकान, नौकर-चाकर, मोटरगाड़ी—सभी कुछ था। कमरे में दो पलंगों को छोड़कर और कुछ नहीं है। सबसे छोटा बच्चा विजय मा के साथ सो रहा है। बाकी दोनों बच्चे, बरामदे में, अपनी दादी के पास सोए हुए हैं।

रात ठण्डी है। तेज़ हवा चल रही है। मकान के किवाड़ों में कुछ खटखटाहट-सी पैदा हुई, और सरोजिनी के पति महोदय की नींद उचट गई। उन्होंने अनुभव किया कि सरदी बढ़ गई है। उन्हें बच्चों का खयाल आया, वह उठे और बरामदे में पहुंचे। देखा, दोनो बच्चे सुख की नींद सो रहे हैं। बच्चे बिलकुल सिकुड़े हुए पड़े थे, उन्होंने उन दोनों पर कम्बल डाल दिए। अन्दर आए, तो देखा कि सरोजिनी भी सिकुड़ी हुई पड़ी है। उन्होंने सरोजिनी का कम्बल ज़रा-सा खींचा ही था कि उसकी नींद उचट गई। कमरे के बिलकुल हल्के हरे प्रकाश में अपने पति को पहचानकर सरोजिनी ने पूछा—'क्यों, क्या बात है?'

'देखो न, किस तरह सिकुड़कर पड़ी हो। ज़रा कम्बल ओढ़ लो न।'

'कितने बजे होंगे?'

'दो बज चुके है।'

'बच्चों को भी तो सरदी लग रही होगी?'

'उन्हें देख आया हूं। देखो न, आज एकाएक सरदी कितनी बढ़ गई है!'

'मैंने माताजी से पहले ही कहा था कि आज बच्चों को अन्दर सुलाइएगा।'

'खैर, कल से सभी लोगों को अन्दर ही सोने के लिए कह दूंगा।'

और अधिक बातचीत नहीं हुई। दरवाज़ा हवा से हिलता था, अतः उसे अन्दर से बन्द कर पति-पत्नी पुनः सो गए।

सहसा एक ज़बर्दस्त धक्का खाकर सरोजिनी की नींद टूट गई। उसके हाथ स्वयं विजय पर पड़े, और उसने उसे अपनी छाती से चिपका लिया।

एक, दो और तीन! बस, सभी कुछ समाप्त।

उफ, यह कितना भारी बोझ है। मैं कहां हूं? ज़मीन पर ही हूं, या पृथ्वी ने मुझे अपने अन्दर कर लिया है। तुम सब कौन हो? हटो, मुझे छोड़ दो। देखो, वे कराह रहे हैं! ओह, कहां हो मेरे प्यारे! मेरे नाथ! मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। मेरा मुंह दबा हुआ है, सारा शरीर दबा हुआ है। मुझे कोई कुचल रहा है। तुम कहां हो? देखो, कराहो मत। उठो और देखो, बच्चों का क्या हाल है?

यह किसके सिसकने की आवाज़ है। मालूम नहीं पड़ता यह कौन कराह रहा है! उफ, कहीं मेरा विजय तो नहीं? मेरी छाती पर यह गीला-गीला गरम-गरम गद्दा-सा किसने लाकर रख दिया? मेरा विजय कहां है? मेरे साथ ही तो वह सोया हुआ था।

मैं अपने हाथ हिलाना चाहती हूं। बायां हाथ कहां है; है भी या नहीं, कुछ पता नहीं चलता। दाया हाथ? हां, दायां हाथ ज़रूर है; मैं अभी इसी हाथ की मदद से आज़ाद होती हूं; इस बन्धन से निकलती हूं। हां, हिलो हिलो, ज़रा-ज़ोर के साथ। यह क्या, सिर्फ उंगलियां अपने आसपास के पत्थरों से टकराकर पुनः निश्चेष्ट के समान पड़ी रह जाती हैं। मेरी बांह! ओह, मेरी बांहें कहां गईं?

विजय! विजय! बेटा विजय, देखो, तुमपर बोझ पड़ रहा होगा। मेरी छाती से खिसककर एक तरफ को हो जाओ और यह जो गीला-गीला, गरम-सा, गुदगुदा गद्दा मेरी छाती पर पड़ा है, वह मैं तुमपर डाल दूंगी। बेटा, तुम